RNI No. : UPHIN-2009/29369

डाक पंजीकरण : KANPUR HO/002/2025-27
प्रधान डाकघर कानपुर-डाक प्रेषण दिनांक 29/30

वार्षिक सदस्यता शुल्क 100/-

द्रविड़ भारत

www.dbindia.org.in

सामाजिक परिवर्तन का मासिक पत्र

गौतम बुद्ध

बाबा साहेब डा0 अम्बेडकर

सितम्बर–2025 | वर्ष – 17 | अंक : 08 | मूल्य : 5/-

Youtube पर Dravid Bharat Channel को Subcribe करें और दबायें।

सम्पादकीय

RNI No. : UPHIN-2009/29369

संपादक : उमेश्वरी देवी, मो.: 9005204074
संरक्षक मण्डल : मा. रामदीन अहिरवार (महोबा), मा. राम अवतार चौधरी (सहा.अभि. जलकल विभाग), मा. छविलाल वर्मा (चरखारी), मा. हरिनाथ राम (दिल्ली), मनीष कुमार मो. 9415053621
राज्य ब्यूरो प्रमुख उत्तर प्रदेश :
सुनील कुमार, ढेलवा, गाजीपुर (उ.प्र.), मो.: 9935363730, 9170836363
योगेन्द्र कुमार (ब्यूरो चीफ चित्रकूट मण्डल) मो.: 8299162841
हमीरपुर ब्यूरो प्रमुख – रघुवर प्रसाद, मो.: 9793739030
क्षेत्रीय सम्पादकीय कार्यालय :
40/69, डी–5, श्यामलाल का हाता, परेड, कानपुर (उ.प्र.), मो. : 8756157631
ब्यूरो प्रमुख लखनऊ मण्डल :
राजकुमार, उन्नाव
मो.: 9889273743, 9392660070
हरियाणा राज्य :
डा. रमेश रंगा, ग्राम–सराय, औरंगाबाद, पो.–बहादुरगढ़,जिला–झज्जर (हरियाणा),09416347052
कानूनी सलाहकार : एड. रामप्रकाश अहिरवार, एड. यू.के. यादव, मोती लाल वर्मा, एड. विजय बहादुर सिंह राजपूत, एड. रमाकान्त धुरिया, रामऔतार वर्मा, एड. सुशील कुमार, कानपुर
मध्य प्रदेश राज्य : पुष्पेन्द्र कुमार
कार्यालय : ग्रा. व पो.–रामटौरिया, जिला–छतरपुर
छत्तीसगढ़ राज्य : ब्यूरो प्रमुख
रमा गजभिये, मो.: 7828273934
दिल्ली प्रदेश : C/o अनिल कुमार कनौजिया C-260, हर्ष विहार, हरिनगर एक्सटेंशन पार्ट–III, बदरपुर, नई दिल्ली–44, मो. : 09540552317
राजस्थान राज्य : रघुनाथ बौद्ध, श्याम रघु फुट वियर, दुकान नं.–1, गणेश मार्केट, पुलिस चौकी के सामने, अलवर, जिला–अलवर–301001, मो. : 09887512360, 0144–3201516
बाबूलाल बौद्ध, अलवर, मो.–08058198233
संपादकीय/विज्ञापन प्रसार/पंजीकृत कार्यालय :
ग्रा व पो.–रिवई (सुनैचा), जिला–महोबा (उ.प्र.)
मो. : 9005204074, 8756157631
E-mail : dravinbharat1@gmail.com
प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वामी
उमेश्वरी देवी द्वारा ग्रा. व पो.–रिवई (सुनैचा), जिला महोबा से प्रकाशित व श्रेय ऑफसेट प्रा. लि., 109/406, नेहरू नगर, कानपुर, 84/1, बी, फजलगंज, कानपुर से मुद्रित

प्रकाशित पत्रिका में प्रकाशित लेख, सामग्री, में संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं है। इसमें किसी भी प्रकार का दावा या विचार मान्य नहीं होगा। लेख के विवादित होने पर लेखक ही उत्तरदायी होगा समस्त विवादों का निपटारा महोबा न्यायालय में होगा पत्रिका का संपादन एवं संचालन पूर्णतयः अवैतनिक एवं अव्यवसायिक है।

मिशन को बढ़ाने के लिए सहयोग करें –
भारतीय स्टेट बैंक
पी.पी.एन. मार्केट, कानपुर
खाता सं.–33496621020
IFSC CODE-SBIN0001784

हिंदू और जातिप्रथा में उसका अटूट विश्वास

हिंदू समाज–सुधारकों में कुछ उदारवादी भी हैं। इस वर्ग का कहना है कि अस्पृश्यता हिंदुओं की जातिप्रथा से भिन्न है। इस सिद्धांत के आधार पर वे कहते हैं कि जातिप्रथा नष्ट किए बिना भी अस्पृश्यता दूर कर सकती है। धर्मनिष्ठ हिंदू अस्पृश्यता दूर करने का उतना ही विरोधी है, जितना कि वह जातिप्रथा को दूर करने के विरूद्ध है। वह दो चरणों में समाज–सुधार का विरोधी है। परंतु राजनीति के खिलाड़ी हिंदुओं को यह विचार बहुत पसंद है। साफ तौर पर इसके दो कारण हैं। पहली बात तो यह है कि इस प्रकार उसे संसार को दिखाने का अवसर मिलता है कि वह लोकतंत्र का सबसे बड़ा समर्थक है। दूसरी बात यह है कि अगर वह जातिप्रथा का विरोध नहीं करता है, तब सवर्ण हिंदुओं द्वारा कांग्रेस को छोड़ने का कोई भय नहीं रह जाता।

जो लोग जातिप्रथा को दूर किए बिना अस्पृश्यता–निवारण की बात करते है वे अपने तर्क की पुष्टि में 'मनुस्मृति' के दसवें अध्याय के चौथे श्लोक को उद्धृत करते हैं। इस श्लोक में मनु केवल चार वर्ण बताता है। कोई पंचम वर्ण है ही नहीं। इस श्लोक का अर्थ इस प्रकार किया जाता है कि अस्पृश्य लोग शूद्रों की श्रेणी में है और जब शूद्रों को न छूने का कोई विधान नहीं है, तब अस्पृश्यों को छूने में भी कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। वह व्याख्या राजनैतिक हिंदुओं को चाहे जितनी अच्छी लगे, लेकिन मनु के अभिप्राय से यह व्याख्या मेल नहीं खाती। इस श्लोक की व्याख्या अन्य प्रकार की भी हो सकती है और इसका अर्थ यह भी हो सकता है कि मनु चातुर्वर्ण्य का विस्तार नहीं चाहता था और इन समुदायों को मिलाकर पंचम वर्ण की व्यवस्था के पक्ष में नहीं था, जो चारों वर्णों से बाहर थे। यह कहकर कि पंचम वर्ण नहीं है, वह यह बताना चाहता है कि जो चातुर्वर्ण्य से बाहर हैं, उन्हें वह पांचवा वर्ण बनाकर हिंदू समाज में शामिल नहीं करना चाहता था। इस बात को उसने स्पष्ट रूप से कहा है, जब वह वर्ण–बाह्य लोगों का जिक्र करता है, जिसका अर्थ है वे लोग, जो वर्ण–व्यवस्था से बाहर हैं। जरूरत ही क्या थी? वर्ण–बाह्य में भी वह दो श्रेणियां रखना चाहता था। उसने इन्हें हीन और अन्त्येवासी कहा है। इन तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि उक्त श्लोक का जैसा भाष्य प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया जाता है, उससे कट्टरपंथी हिंदुओं का भ्रम में नहीं डाला जा सकता कि अस्पृस्यता 'मनुस्मृति' से मेल नहीं खाती और इसका उन्मूलन हिंदू विधान के प्रतिकूल नहीं है।

मनु के श्लोक की उक्त व्याख्या पर आश्रित तर्क सामान्य और अशिक्षित हिंदू की समझ से परे है। वह तो केवल दों बातें जानता है। एक तो यह कि समाजिक व्यवहार में तीन प्रकार के बंधन हैं, जिनका पालन किया जाना चाहिए। वे हैं – (1) जातियों के बीच आपस मे खान–पान निषिद्ध, (2) जाति के बारह बेटी व्यवहार वर्जित, और (3) कुछ जातियों के लोगों छू जाने पर भी परहेज। पहले दो प्रतिबंधों से जाति बनती है और तीसरे
प्रतिबंध से अस्पृश्यता का जन्म होता है। सवर्ण हिंदू को प्रतिबंधों की संख्या से कोई गुरेज नहीं। वह प्रतिबंध के आचरण पर विशेष ध्यान रखता है। जब उससे इन प्रतिबंधों का अनुपालन नहीं करने के लिए कहा जाता है, तब वह पलट कर पूछ बैठता है, क्यों? वह कहता है, 'जब मैं पहले दो प्रतिबंधों को मानता हूं तो तीसरे का अनुपालन करने में क्या हर्ज है।' मनोवैज्ञानिक रूप में जातिप्रथा और अस्पृश्यता आपस में गुंथी हुई है और एक ही सिद्धांत पर आधारित हैं। यदि कोई सवर्ण हिंदू छूतछात बरतता है तो इसका अर्थ है कि वह जाति में यकीन रखता है।

यदि इस दृष्टि से विचार किया जाए, तब यह स्पष्ट हो जाएगा कि जातिप्रथा को समाप्त किए बिना अस्पृश्यता के विनाश की आशा करना बालू की भीत बनाना है। यह विचार कि जातिप्रथा और अस्पृश्यता, दोनों अलग–अलग हैं, एक दिवा–स्वप्न है। दोनों एक ही हैं और इन्हें अलग नहीं किया जा सकता। अस्पृश्यता, जातिप्रथा का ही परिणाम है। दोनों को एक–दूसरे से अलग नहीं किया जा सकताा। दोनों का चोली–दामन का साथ है। एक अन्य कारण भी है, जिससे किसी भी कानूनी या बौद्धिक तरीके से अस्पृश्यता को मिटाया नहीं जा सकता। जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है कि हिंदू समाज–व्यवस्था सीढ़ी असमानता के सिद्धांत पर आधारित है। यदि यह कहा जाए कि कुछ लोग ही इस सिद्धांत की इस विशिष्टता को समझते हैं, तो यह अतिशयोक्ति नहीं होगी। यदि कोई समाज समाजिक असमानता पर आधारित है तो वह उस समाज से बिल्कुल भिन्न है, जो सीढ़ी दर सीढ़ी असमानता पर आधारित है पहले प्रकार का समाज एक ढुलमुल व्यवस्था है, जो आत्म–सुरक्षा में सक्षम नहीं है, जब कि दूसरे प्रकार का समाज अपने अस्तित्व को बनाए रखने में पूर्णतः सक्षम है। जो समाजिक व्यवस्था असमानता पर आधारित होती है, उसमें निचले वर्ण के लोग इस व्यवस्था का उल्लंधन करने के लिए एक दूसरे के साथ एकजुट हो सकते है। उस व्यवस्था को बनाए रखने में किसी की भी रूचि नहीं होती। उस समाजिक व्यवस्था पर सामूहिक प्रहार की संभावना नहीं होती, जो सीढ़ी दर सीढ़ी असमानता पर आधारित होती है, क्योंकि सभी पक्षों का दुख–दर्द समान नहीं होता है। यह तो तभी हो सकता है जब केवल ऊंचे और नीचे का भेदभाव हों। इस सीढ़ीनुमा व्यवस्था में शीर्ष पर ब्राम्हण हैं। सर्वोच्च से नीचे उच्चतम क्षत्रिय है। उच्चतर से नीचे उच्च वैश्य हैं। उच्च से नीचे निम्न अर्थात् शूद्र हैं और निम्न से नीचे अर्थात जो निम्नतर हैं, वे अस्पृश्य हैं। उच्चतम से सभी को गिला है और सभी उसका पतन चाहेंगे। पर नीचे वाले एकजुट नहीं हो सकते। उच्चतर वर्ग उच्चतम वर्ग से पिंड छुड़ाना चाहता है, परंतु वह उच्च निम्न और निम्नतर वर्ग के कंधे से कंधा नहीं मिला सकता कि कहीं वे उसके बराबर न हो जाएं। उच्च वर्ग उच्चतर वर्ग को गिरा देना चाहता है जो उसके ऊपर है, परंतु वह निम्न और निम्नतर से नहीं मिलेगा कि कहीं वे उसके बराबर का दर्जा न पा जाएं। निम्न वर्ग, उच्चतम, उच्चतर और उच्च वर्ग से छुटकारा पाना चाहेगा, परंतु निम्नतर से उसकी पटरी नहीं बैठेगी कि कहीं निम्नतर निम्न का दर्जा न पा ले। सीढ़ीनुमा समाज में सिवा इसके कि जो समाजिक पिरामिड में सबसे नीचे है, कोई भी पूरी तरह विशेषाधिकारों से वंचित नहीं है। दूसरों को श्रेणीगत विशेषाधिकार प्राप्त हैं। यहां तक कि निम्नतर की तुलना में विशेषाधिकार प्राप्त हैं। चूंकि हर वर्ग को विशेषाधिकार प्राप्त हैं, अतः हर वर्ग उस व्यवस्था को बनाए रखना चाहता है।

अस्पृश्यता अस्पृश्यों के लिए दुर्भाग्पूर्ण हो सकती है। लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं कि वह हिंदुओं के लिए एक वरदान हैं। इससे उन्हें एक ऐसा वर्ग मिलता है, जिसकी अपेक्षा वह अपने को श्रेष्ठ समझ सकते हैं। हिंदू ऐसा समाज नहीं चाहते, जिसमें कोई भी कुछ न हो। वे ऐसा समाज भी नहीं चाहते, जिसमें हर कोई कुछ भी बन सके। वे तो ऐसा समाज चाहते हैं, जिसमें वे ही कुछ हों और बाकी लोग कुछ भी न हों। अस्पृश्य कुछ भी नहीं है' लोगों का वर्ग है। इससे हिंदू कुछ हो जोते है। अस्पृश्यता हिंदुओं के सहज गर्व को बनाए रखती है और उन्हें ऐसा अनुभव करने का अवसर प्रदान करती है कि वे अपने को बड़ा अनुभव करने के साथ बड़े दिखें भी। यह एक अनय कारण है, जिससे हिंदू उन लोगों के प्रति अस्पृश्ता को नहीं त्यागना चाहते हैं, जो बहुतांश तो हैं, लेकिन वे छोटे लोग हैं।

अस्पृश्यता तभी दूर हो सकेगी, जब संपूर्ण हिंदू सामाजिक व्यवस्था, विशेष रूप से जातिप्रथा विलीन हो जाए। क्या यह संभव है? प्रत्येक संस्था का कोई न कोई आधार होता है। ये आधार तीन प्रकार के होते हैं, जो किसी संस्था को जीवन प्रदान किए रहते है। ये आधार है– कानूनी, सामाजिक और धार्मिक। संस्था का स्थायित्व उसके अपने आधार की शक्ति पर निर्भर करता है। जातिप्रथा के आधार की प्रकृति कैसी है? दुर्भाग्य से जातिप्रथा का आधार धार्मिक है। जातिप्रथा, वर्ग–व्यवस्था का नया संस्करण है, जिसे वेदों से आधार मिलता है। वेद हिंदू धर्म के पवित्र ग्रंथ है और अकाट्य हैं। मैं दुर्भाग्यपूर्ण इसलिए कहता हूं कि जिस किसी का आधार धर्म होता है, वह इस कारण ही पवित्र और सनातन बन जाता है। हिंदुओं के लिए जातिप्रथा पवित्र है और सनातन है। यदि जातिप्रथा विलीन नहीं हो सकती, तब यह आशा किस प्रकार की जाए कि अस्पृश्यता विलीन हो जाएगी?

साभार : बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर, सम्पूर्ण वाङ्मय खण्ड–9, (पृष्ठ सं० 157 से 160 तक)
डॉ. बी. आर. अम्बेडकर

संगठन क्षमता

महामानव डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने ''शिक्षित बनो, संघर्ष करो और संगठित रहो'' जो आह्वान किया था, वह सम्पूर्ण अनुसूचित जाति एवं जनजाति वर्गों के लिए था। यह तो स्पष्ट है कि अंग्रेजों के आगमन से पूर्व इस देश में जो शिक्षा थी, वह धार्मिक ग्रंथों के पठन–पाठन तक सीमित थी और उसमें व्यावहारिक एवं व्यवसायिक ज्ञान का समावेश नहीं था और वह मनुवादी व्यवस्था के अनुसार ब्राह्मण वर्ग के लिए ही थी। अछूतों अर्थात् तथाकथित शूद्रों के लिए तो वह थी नहीं, इसलिए शिक्षा हेतु सबके लिए दरवाजे खोलने का श्रेय अंग्रेजों को ही जाता है, हालांकि उन्होंने इस देश के सामाजिक ताने–बाने को तोड़ने का कोई प्रयास नहीं किया, इसलिए उच्च कहे जाने वाले वर्गों के लोग ही उनके द्वारा स्थापित स्कूलों व कॉलेजों में शिक्षा के लिए आगे आए। धर्मान्तरण के लालच में ईसाई मिशनरियों के जरूर अछूतों को शिक्षा प्रदान करने का काम किया। इससे अछूतों की सामाजिक तो नहीं, लेकिन आर्थिक स्थिति में जरूर फर्क आया।

हिन्दू मान्यता के अनुसार बड़ी–से–बड़ी शिक्षा के बावजूद महार, चमार, पासी आदि कोई भी बराबरी का हकदार नहीं हो जाता, इसका दंश डॉ. अम्बेडकर से ज्यादा किसी ने नहीं झेला, इसलिए वे पूरे दलित समाज को शिक्षित करने पर जोर देते थे। उनका मानना था कि लोग शिक्षित होने पर सवर्णों की रीति–नीति से वाकिफ हो जाएंगे, उनमें बराबरी का अहसास पैदा होगा और वे उसे पाने के लिए संगठित होकर प्रयास करेंगे। लेकिन यह कैसी विडम्बना है कि उनके इस प्रेरणादायी उद्‌बोधन का प्रभुत्वसम्पन्न वर्णों ने ही ज्यादा प्रभावी रूप से अनुसरण किया और वे शिक्षित तो हुए ही, क्योंकि सारे अवसर उनके अनुकूल थे, परन्तु चौथे वर्ण को वहीं–का–वहीं दबाने के लिए संगठित भी हो गए। मगर अनुसूचित जाति/जनजाति के लोग पहले से भी अधिक खेमों में बंट गए और आरक्षण की सुविधा पाने के लिए छीना छपटी मच गई और सवर्ण अलग–अलग को उंगली लगाकर तमाशाबीन बनाता रहा। वह एक–एक को यही कहकर फुसलाता रहा कि यह तो तेरे लिए था और उसने हड़प लिया या उसने ज्यादा ले लिया या तुम अपना हिस्सा अलग करवा लो। इस दुरंगी चाल में वह कहीं–कहीं कामयाब भी हुआ।

चमार के अन्तर्गत ही आने वाली उपजातियों ने अलग जातीय अस्तित्व बनाने के लिए अपने ही दायरे में संगठन बनाने शुरू कर दिए। न तो 'दि चमार्स' के लेखक जी. डब्ल्यू. ब्रिग्स की बात पर अमल किया और न ही डॉ. अम्बेडकर के क्रांतिकारी उद्‌घोष पर एकजुटता दिखाई, जिसका ऐलान करते हुए सन् 1935 में ही डॉ. अम्बेडकर ने कहा था– ''मैं हिन्दू धर्म में पैदा हुआ हूँ, जो मेरे वश में नहीं था, परन्तु हिन्दू रहकर मरूँगा नहीं''। जिस पर उन्होंने बहुत लम्बा मनन–चिंतन करके 21 वर्ष बाद 14 अक्टूबर, 1956 को अन्तिम निर्णय लिया और बौद्ध धर्म में दीक्षित होने को अपना पुनर्जन्म बताया। आज बड़ा ही क्रूर मजाक उनकी वैचारिक क्रान्ति के साथ हो रहा है, लोग देवता की तरह उनकी पूजा करते है, लेकिन उनकी बातों को नहीं मानते। जिस जाति समूह को उन्होंने अनुसूचित वर्ग की संज्ञा दी थी, उनमें आपस में ही संघर्ष चल रहा है। इधर जब कर्मचारी संगठनों ने 'बैकलॉग' पूरा करने के लिए दबाव बनाया, उधर सार्वजनिक उद्योगों और अधिक के निजीकरण की मुहिम तेज कर दी गई, फिर नेतृत्व के अहम् और टकराहट से इन संगठनों की धार भी कुन्द हो गई।

पहले तो चमार एक ही माला के मोती समझकर इन सबमें शिरकत करता रहा, लेकिन जब राज्य सरकारों के स्तर पर अनुसूचित वर्ग के कोटे को दो भागों में बाँटने की साजिश को अमली जामा पहनाया गया और उससे चमार के हितो को ठेस पहुंची, तो प्रतिकार में उसने जाति के नाम से संगठन बनाने की शुरुआत की और हरियाणा प्रदेश चमार संघर्ष समिति की ओर से प्रान्तीय स्तर पर सम्मेलन तथा जनसभाएँ आयोजित की जाती हैं, जिसमें बड़े पैमाने पर बिरादरी के लोग शामिल होते है और सभी समस्याओं के समाधान के लिए रीति–नीति बनाते हैं। 'दुलीना' और 'हरसौला' की घटनाएँ हरियाणा के माथे पर कलंक हैं, इन दोनों ही मामलों पर प्रदेश की चमार बिरादरी के लोगों ने एकजुटता का परिचय दिया, जिससे इन घटनाओं में अपराधियों को सजा का मार्ग प्रशस्त हो सका।

इसी प्रकार महाराष्ट्र में महाराष्ट्रीय चर्मकार संघ की स्थापना सन् 1995 में 24 सितम्बर को हुई, जिसका श्रेय मा. बबनराव घोलप को जाता है और प्रदेश के सभी जिलों में उसकी शाखाएँ काम कर रही है। यह संघ चमारों की आर्थिक, शैक्षिक तथा सामाजिक प्रगति के लिए दृढ़संकल्प है। श्री घोलप का कहना है कि हमारा समाज इतना पीछे क्यों है, इस पर सोचने का वक्त आ गया है। पहली जरूरत तो यह है कि दलित हीनता–बोध को मुक्त हों। जाति यदि किसी ब्राह्मण के लिए 'गर्व' की चीज है, तो दलित इस पर शर्म क्यों महसूस करे। दलितों को भी चाहिए कि वे एकजुट हों तथा अपने पर गर्व अनुभव करें कि हमारा अपना समूह इतिहास, संस्कृति और परम्पराएँ हैं। विद्वान और शूरवीर से लेकर संतों तक दलितों के पास गौरव का अक्षय भंडार है, फिर हीनता किस बात की?

श्री बब्बनराव घोलप जी मजबूत संगठन के बल पर और अपने प्रभाव से महाराष्ट्र सरकार की कल्याण योजनाओं का लाभ चर्मकारों को दिलवाने में सक्षम रहे हैं। चर्मकार संघ चमार समाज को राष्ट्रीय स्तर पर एकजुट करने के लिए भी प्रयत्नशील है। सामाजिक उत्थान ही संघ का उद्देश्य नहीं, बल्कि आर्थिक प्रगति भी उसके एजेंडे में प्राथमिकता के आधार पर है।

महाराष्ट्रीय चर्मकार संघ एक पूर्णतः गैर–सरकारी संगठन है। छत्रपति शिवाजी महाराज और शाहूजी महाराज, संघ के आदर्श है, इसलिए समता आधारित समाज–व्यवस्था का निर्माण करना उसका सपना है। 'मन चंगा तो कटौती में गंगा' संत रविदास जी का यह वचन बोध वाक्य के रूप में चुना गया है इसी प्रकार आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, कर्नाटक, राजस्थान, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश तथा बिहार में चमार बिरादरी के संगठन काम कर रहे हैं। लेकिन राष्ट्रीय स्वरूप के चमार बिरादरी के संगठन की अभी कमी बनी हुई है, जो सही मायने में तमाम बिरादरी को एकजुट कर सकें।

अनेक जातियों/उपजातियों ने अपनी–अपनी पहचान बनाकर दूसरे समाजों एवं सरकार पर दबाव बनाने तथा किसी भी प्रकार से अधिक लाभ लेने के लिए जाति एवं उपजाति के नाम से संगठन बनाए हैं। उदाहरण के रूप में क्षत्रिय महासभा, राजपूत महासभा, ब्राह्मण महासभा, वैश्य महासभा, जाट महासभा, गुर्जर महापंचायत, अग्रवाल महासभा, राजपूत महासभा तथा बिश्नोई महासभा और अनुसूचित जातियों/जनजातियों में वैरवा महासभा, रैगर महासभा, कोली महासभा, धोबी महासभा, खटीक महासभा, जाटव महासभा, धानक महासभा और गौंड महासभा बनी हैं, जो अपनी जाति के उत्थान हेतु प्रयास कर रही हैं, जिससे चमार समाज काफी दबाब में है और इस होड़ में अपने आपको काफी पीछे ढकेला गया महसूस कर रहा है। इन जातिगत संगठनों को लाभबन्दी के मद्‌देनजर चमार जाति राष्ट्रीय स्तर पर संगठन बनाने में जिन लोगों ने पहल की हैं, उनमें मुख्य रूप से श्री राष्ट्रीय स्तर का संगठन बनाने में जिन लोगों ने पहल की हैं, उनमें मुख्य रूप से श्री ब्रह्मपाल, जो अनुसूचित जाति/जनजाति कर्मचारी संगठनों के अखिल भारतीय परिसंघ के महासचिव रह चुके हैं और वर्तमान में अखिल भारतीय पी.एण्ड टी. एस.सी./एस.टी. वेलफेयर एसोसिएशन के दो दशक से भी अधिक समय से महासचिव है, श्री राजेन्द्र सिंह, जो अनु–जाति/जनजाति कर्मचारियों के कई राष्ट्रीय स्तर के संगठनों से सम्बद्ध रहे हैं डॉ. आर. एम. एस. विजयी,
जो एक स्वयंसेवी संगठन, अखिल मानव समाज सेवा संघ तथा अमर शहीद अधम सिंह जन्म शताब्दी समारोह समिति के संस्थापक अध्यक्ष हैं, श्री राम प्रसाद आर्य, चमार महासभा, बस्ती, उत्तर प्रदेश के पूर्व अध्यक्ष, श्री सुरेन्द्र पाल, एडवोकेट, मुजफ्फरनगर, उ.प्र. श्री राजपाल सिंह, 'मानव' दिल्ली, श्री शिव कुमार कटारिया, बडौत, उ.प्र. तथा मा. विजेन्द्र कुमार दिल्ली आते हैं। प्रेरक के रूप में डॉ. सूरजभान जो राष्ट्रीय अनु.जाति जनजाति आयोग के अध्यक्ष का बहुत बड़ा योगदान है, जो कहते थे कि सबसे पहले मैं चमार हूँ और सब कुछ बाद में।

अखिल भारतीय चमार महासंघ के नाम से अस्तित्व में आया राष्ट्रव्यापी संगठन अभी प्रारंभिक चरण में हैं और चमार समाज की सभी समस्याओं को हल करना, कराना इसकी कार्य सूची में है। लेकिन सन् 2004 में बना यह गैर–राजनीतिक संगठन अपने उद्देश्यों के अनुरूप देश के विभिन्न प्रदेशों में अपनी जड़ जमाने के लिए प्रयत्नशील है और अभी तक इसकी गतिविधियाँ राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली और उत्तर प्रदेश तक ही सीमित हैं।

जरूरत इस बात की है –

1. चमार समुदाय के लोगों में अखिल भारतीय स्तर पर किसी भी प्रकार के आपसी मनमुटाव या भेदभाव को दूर कर संगठित करना।
2. उनके हित में केन्द्र व राज्य सरकारों द्वारा निर्धारित नीतियों/कार्यक्रमों के बारे में उन्हें शिक्षित करना तथा परिलक्षित क्षेत्र का लाभ उन तक पहुँचाने के लिए प्रयास करना।
3. चमार समाज के बच्चों के लिए शिक्षा व रोजगार के अधिक अवसर पैदा करना या सरकार से कराना व इस कार्य के लिए लोगों को प्रोत्साहित करना ओर चमार रेजीमेंट भारतीय सेना में पुनः स्थापित कराना।
4. चमार समाज के लोगों के आर्थिक विकास, सामाजिक सुधार व सांस्कृतिक गतिविधियों की तीव्रता के लिए विशेष योजनाएं तैयार कर को–आपरेटिव बेस पर चलाना।
5. किसी भी स्तर पर चमार समाज के लोगों के उत्पीड़न व अत्याचार का विरोध करना तथा केन्द्र/राज्य सरकार के संज्ञान में लाना।
6. चमार समाज के ऐतिहासिक गौरव व सम्मान को स्थापित करने हेतु ऐतिहासिक शोध कार्य करना इससे समाज को अवगत कराना और दहेज प्रथा के विरोध में वातारण बनाना।
7. चमार समाज के लिए उनकी संख्या के अनुसार हर स्तर पर प्रतिनिधित्व प्राप्त करने हेतु प्रयास करना तथा समाज के प्रति पूर्ण निष्ठावान व ईमानदार प्रतिनिधि को उत्साहित करना व नामित करना आदि।

चमार समाज की भलाई के इन मुद्‌दों पर सक्रिय रूप से कार्रवाई हो, इसके लिए केवल बातें करने से काम चलने वाला नहीं है और समाज के प्रति निष्ठावान और सेवा भाव के काम करने वालों की जरूरत है, जो निजी स्वार्थ और महत्वाकांक्षा से परे हों और चमार जाति के अतीत का गौरव हासिल करने के लिए प्रतिबद्ध हों। आशा की जाती है कि महासंघ का शीर्ष नेतृत्व समाज की बराबरी और खुशहाली की लड़ाई में पीछे नहीं हटेगा। वैसे समाज के प्रति निष्ठावान लोगों की ओर से अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर संगठन बनाये गए, यू. के. तथा यू. एस. ए. में रविदास महासभा तथा गुरु रविदास टैम्पल ट्रस्ट की स्थापना एक महत्वपूर्ण कदम है, परन्तु गौरवशाली चमार जाति को बराबरी और खुशहाली के स्तर पर लाने के लिए बहुत कुछ किया जाना बाकी है और इसके लिए अधिक सक्रिय प्रयासों की जरूरत है।

साभार :
चमार जाति इतिहास और संस्कृति
पृष्ठ संख्या 81 से 85 तक
एस. एस. गौतम
डॉ. आर.एम.एस. विजयी

Youtube पर Dravid Bharat Channel को Subcribe करें और 🔔 दबायें।

अध्याय 2 हिंदू समाज–व्यवस्था : इसके मूलभूत सिद्धांत

पिछले अंक का शेष भाग .....

III

यदि हिंदू समाज–व्यवस्था समानता तथा भाईचारे पर आधारित नहीं है, तो वह कौन से सिद्धांतों पर टिकी हुई है? इस प्रश्न का केवल एक ही उत्तर है। कुछ ही लोग यह समझने में समर्थ होंगे कि वे क्या हैं, लेकिन उनकी प्रकृति और हिंदू समाज पर उनके प्रभाव के बारे में कोई संशय नहीं हैं हिंदू समाज–व्यवस्था का पोषण तीन सिद्धांतों द्वारा होता है इनमें सबसे पहला सिद्धांत है, सीढ़ी भेदभाव का व्यवहार। इस चरणबद्ध असमानता का यह सिद्धांत मूल सिद्धांत और विचार से परे है। चारो वर्ण सपाट धरातल पर नहीं रचे गए हैं, जो भिन्न होते हुए भी समान हों। ये सीढ़ीनुमा धरातल वाले हैं। ये न केवल भिन्न–भिन्न है, वरन् स्थिति में भी असमान हैं और एक दूसरे के ऊपर टिके हुए हैं मनु की योजनानुसार ब्राह्मण को पहले वर्ण में रखा जाता है उसके नीचे का क्षत्रिय वर्ण होता है। क्षत्रिय से निचले वर्ण का वैश्य होता है वैश्य से निचला वर्ण शूद्र होता है तथा शूद्र से अगला वर्ण जाति शूद्र या अस्पृश्य का होता है। इन वर्गों के बीच अग्रता का यह क्रम मात्र परंपरागत नहीं है। यह आध्यात्मिक, नैतिक तथा वैधानिक हैं। जीवन का कोई भी हिस्सा नहीं है, जो वर्गीकृत असमानता के इस सिद्धांत से अछूता हो।

इसके पक्ष में मनुस्मृति के अनेक दृष्टांत दिए जा सकते हैं। मैं इस बात को सिद्ध करने के लिए चार उदाहरण दूंगा। ये है। दासत का नियम, विवाह का नियम, दंड का नियम और संस्कार का नियम तथा सन्यास का नियम। हिंदू नियम दासता को एक कानूनी प्रथा मानते हैं मनुस्मृति में तो सात प्रकार की दासता का उल्लेख है। नारदस्मृति में दासता की पंद्रह श्रेणियां मिलती हैं। दासों की संख्या का यह अंतर तथा वे वर्ग जिनके अंतर्गत ये आते हैं, महत्वपूर्ण नहीं है महत्वपूर्ण तो यह जानना है कि कौन किसको दास बना सकता है। इस संबंध में नारदस्मृति तथा याज्ञवल्क्यस्मृति से निम्नांकित उद्धरण दिए जा सकते हैं।

नारदस्मृति : 5.39 चारों वर्णों के उल्टे क्रम में दासता की कोई व्यवस्था नहीं है, सिवाय इसके जब कोई आदमी अपनी जाति के लिए निर्धारित कर्तव्यों की अवहेलना करता हैं दासता (इस मामले में) एक पत्नी की स्थिति जैसी होती है

याज्ञवल्क्यस्मृति : 16.183 (2) दासता वर्णों के अवरोही क्रम में होती है, आरोही क्रम से नहीं।

दासता को मान्यता प्रदान किया जाना बुरी बात थीं लेकिन यदि दासता के नियम को अपने ही हाल पर छोड़ दिया गया होता, तो इसका कम–से–कम एक परिणाम तो अच्छा होता। इससे समानता को बल मिलता। जाति परंपरा नष्ट हो गई होती, क्योंकि इसके अंतर्गत का एक ब्राह्मण अस्पृश्यों का दास बन सकता था तथा अस्पृश्य ब्राह्मणों के मालिक बन सकते थे। लेकिन यह देखा गया कि बेरोक–टोक दासता का एक समतावादी सिद्धांत था और इसे निरस्त करने का प्रयास किया गया। अतः मनु तथा उनके उत्तरवर्तियों ने इस प्रकार की दासता को मान्यता प्रदान की कि यह वर्ण – प्रथा के विपरीत दिशा में नहीं होगी इसका तात्पर्य है कि एक ब्राह्मण दूसरे ब्राह्मण का दास बन सकता है, लेकिन वह किसी दूसरे वर्ण के आदमी का दास नहीं बन सकता अर्थात वह किसी क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र या अतिशूद्र का दास नहीं बन सकता। दूसरी ओर, ब्राह्मण या क्षत्रिय को नहीं। एक शूद्र किसी दूसरे शूद्र तथा अतिशूद्र को अपना दास बना सकता है, लेकिन किसी ब्राह्मण क्षत्रिय व वैश्य को नहीं। एक अतिशूद्र किसी दूसरे अतिशूद्र को ही अपना दास बना सकता है, लेकिन किसी ब्राह्मण क्षत्रिय या वैश्य को नहीं। एक अतिशूद्र किसी दूसरे अतिशूद्र को ही अपना दास बना सकता है, लेकिन किसी ब्राह्मण, वैश्य या शूद्र को नहीं।

वर्गीकृत असमानता के इस सिद्धांत का एक और उदाहरण शादी–विवाह के नियमों में देखा जा सकता है। मनु कहता हैः

3.12 द्विजों की पहली शादी के लिए उसी जाति की स्त्री की संस्तुति की जाती है, परंतु ऐसे लोगों के लिए, जिन्हें किसी कारण से पुनर्विवाह करना हो, उसमें वर्णों के सीधे नीचे वर्ण की स्त्रियों को वरीयता दी जाती है।

3.13 एक शूद्र स्त्री केवल शूद्र की पत्नी बन सकी है, वैश्य स्त्री एक वैश्य की पत्नी बन सकती है, वह दोनों तथा क्षत्रिय स्त्री किसी क्षत्रिय की पत्नियां बन सकती हैं। वह तीनों तथा ब्राह्मणी की पत्नियां बन सकती हैं।

वस्तुतः मनु अंतर्जातीय विवाह के खिलाफ हैं उनकी व्यवस्था हरेक वर्ग के लिए अपने ही वर्ग में शादी–विवाह करने की है लेकिन वह परिभाषित वर्ग के बाहर भी शादी करने को मान्यता देता है यहां फिर वह वर्गो के बीच असमानता के अपने सिद्धांत को कोई हानि न होने देने के लिए अंतर्जातीय विवाह के प्रति विशेष रूप से सजग हैं दासता की तरह वह अंतर्जातीय विवाह की अनुमति तो देता है, पर उल्टे क्रम में नहीं। यदि कोई ब्राह्मण अपनी बिरादरी से बाहर विवाह कर सकता है तो वह अपने से निचले वर्ण की किसी भी स्त्री से विवाह करने के लिए स्वतंत्र है, अर्थात वह वैश्य तथा शूद्र स्त्री के साथ विवाह नहीं कर सकता हैं एक वैश्य अपने से निचले शूद्र वर्ण की स्त्री से विवाह कर सकता है, लेकिन वह अपने से उच्च वर्णों, ब्राह्मण स्त्री तथा क्षत्रिय स्त्री से विवाह नहीं कर सकता।

तीसरा उदाहरण विधान के नियम में पाया जा सकता है, जिसकी स्थापना मनु ने की है। पहला उदाहरण गवाहों के साथ किए जाने वाले बर्ताव से संबंधित है, गवाहों को निम्नांकित ढंग से शपथ लेनी होती है :

8.87 शुद्ध हृदय न्यायकर्ता शुद्ध तथा सत्य वक्ता द्विज को कई बार पुकारेगा कि वह किसी देवता की प्रतिमा या ब्राह्मण की प्रतीक प्रतिमा के समक्ष पूर्व या उत्तर की ओर मुख करके पूर्वाह्न समय में अपनी गवाही दे।

8.88 न्यायधीश ब्राह्मण से ''कहो' क्षत्रिय से 'सत्य कहो वैश्य से गो बीज और स्वर्ण की चोरी के पाप की झूठी गवाही से तुलना करते हुए तथा शूद्र से उन सभी पापों जो मनुष्य कर सकता है, के दोषों की झूठी गवाही से तुलना करते हुए गवाही देने को कहेगा।

मनु द्वारा निर्धारित अपराधों के दंड का उदाहरण लें सबसे पहले मानहानि के लिए दंड की चर्चा करते है :

8.267 यदि कोई क्षत्रिय किसी पुरोहित की मानहानि करता है तो उस पर सौ पण का जुर्माना किया जाएगा, यदि कोई वैश्य पुरोहित की मानहानि करता है तो उस पर एक सौ पचास या दो सौ पण का जुर्माना किया जाएगा, लेकिन ऐसे किसी अपराध के लिए किसी शिल्पी या दास व्यक्ति को कोड़े लगाए जाएंगे।

8.268 यदि कोई पुरोहित किसी क्षत्रिय की मानहानि करे तो उस पर पचास पण का जुर्माना किया जाएगा, यदि वह किसी वैश्य की मानहानि करता है तो उस पर पच्चीस पण का जुर्माना किया जाएगा तथा दास वर्ग के किसी व्यक्ति की भर्त्सना करने पर उस पर बारह पण का जुर्माना किया जाएगा।

अपमान का अपराध लें। मनु द्वारा निर्धारित दंड इस प्रकार हैं :

8.270 यदि कोई शूद्र व्यक्ति किसी द्विज की घोर भर्त्सना करता है तो उसकी जीभ काट दी जाए। क्योंकि उसने ब्रह्मा के निम्नतम भाग से जन्म लिया है।

8.271 यदि शूद्र उनके नामों तथा वर्णों का अपमानपूर्ण तरीके से उल्लेख करता है, मानों वह कहता है, अरे देवदत्त, तू ब्राह्मण नहीं है तो दस अंगुली लंबी लोहे की गर्म शलाका उसके मुंह में डाली जाएगी।

8.272 यदि शूद्र घमंडपूर्वक पुरोहितों को उसके कर्तव्यों के लिए निर्देश देता है, तो राजा उसके मुंह तथा कान में गर्म तेल डालने का आदेश देगा।

गाली देने के अपराध का दंड। मनु कहता है :

8.276 यदि कोई पुरोहित तथा क्षत्रिय आपस में गाली–गलौज करते हैं तो इसे संबंध में जुर्माना विद्वान राजा द्वारा किया जाएगा और वह दंड या जुर्माना पुरोहित का सबसे कम तथा क्षत्रिय पर उससे अधिक किया जाएगा।

8.277 उपरोक्त अपराध यदि कोई वैश्य शूद्र करते हैं तब उन्हें जबान काटने की सजा छोड़कर शेष सभी प्रकार का दंड उनकी जाति के अनुसार दिए जाए, दंड का यह निर्धारित नियम है।

प्रहार या मारपीट के अपराध के दंड के रूप में मनु का सिद्धांत इस प्रकार है :

8.279 जिस अंग द्वारा नीच जाति में जन्मा व्यक्ति ऊंजी जाति के व्यक्ति पर हमला करेगा या उसे चोट पहुंचाएगा, उसका वह अंग काट लिया जाएगा, यह मनु का अध्यादेश है

मनु के अनुसार अहंकार के अपराध का दंड इस प्रकार होगा :

8.281 नीच जाति का कोई व्यक्ति यदि उच्च जाति के व्यक्ति के साथ उसी स्थान पर अभद्रता के साथ बैठेगा, तो उसके कूल्हे को दाग दिया जाएगा तथा उसे देश निकाला दे दिया जाएगा या राजा उसके नितंब पर गहरा घाव करवा देगा।

8.282 यदि वह घमंड के साथ उस पर थूकता है, तो राजा उसके दोनों होठों को यदि वह उस पर पेशाब करता है तो उसके लिंग को यदि वह अपाल वायु छोड़े तो उसकी गुदा को कटवा देगा।

8.283 यदि वह ब्राह्मण को बालों से पकता है, या इसी तरह यदि वह उसका पैर या गला या अंडकोष पकड़कर खींचता है, तो राजा बिना किसी हिचक या संकोच के उसके हाथों को कटवा दें।

व्यभिचार के अपराध के लिए दंड के बारे में मनु कहता है :

8.359 यदि कोई शूद्र किसी पुरोहित की पत्नी के साथ वास्तव में व्यभिचार करता है, तो उसे मृत्यु दंड मिलना चाहिए पत्नियों के मामले में सभी चारों वर्णों की स्त्रियों की विशेष रूप से रक्षा की जानी चाहिए।

8.366 यदि कोई शूद्र किसी उच्च जाति की युवती से प्यार करता है, तो उसे मृत्यु का दंड मिलना चाहिए परंतु यदि वह कोई समान वर्ग की किसी कन्या से प्यार करता है, तो उसे उस कन्या से शादी करनी होगी, बशर्ते उस कन्या का पिता इसके लिए इच्छुक हो।

8.374 यदि कोई शूद्र किसी द्विज स्त्री के साथ सम्भोग करता है, चाहे वह स्त्री घर पर सुरक्षित है अथवा असुरक्षित, उसे उसी प्रकार दण्ड दिया जायेगा यदि स्त्री असुरक्षित है तो अपराधी के लिंग को कटवा कर तथा उसकी संपत्ति को जब्त कर दण्डित किया जाए। यदि वह रक्षित है तो अपराधी की सम्पत्ति को जब्त कर उसे प्राण दंड दिया जाए।

8.375 रक्षित ब्राह्मणा के साथ व्यभिचार करने पर वैश्य एक वर्ष की सजा के बाद अपनी समस्त धन संपत्ति खो देगा क्षत्रिय पर एक हजार पण जुर्माना किया जाएगा और गधे के मूत्र से उसका मुंडन किया जाएगा।

8.376 लेकिन यदि कोई वैश्य या क्षत्रिय किसी अरक्षित ब्राह्मणी के साथ व्यभिचार करता है, तो राजा वैश्य पर पंच सौ पण तथा क्षत्रिय पर एक हजार पण का केवल जुर्माना करेगा।

8.377 लेकिन यदि ये दोनों किसी न केवल रक्षित पुरोहितानी वरन् किसी प्रसिद्ध व्यक्ति की पत्नी के साथ व्यभिचार करते हैं, तो वे शूद्रों के समान दंडनीय है और तृणाग्नि में जलाने योग्य हैं।

8.382 यदि कोई वैश्य किसी रक्षित क्षत्रिय स्त्री के साथ या कोई क्षत्रिय किसी रक्षित वैश्य स्त्री के साथ व्यभिचार करता है तो उन दोनों को वही दंड दिया जाएगा जो अरक्षित ब्राह्मण के मामले में दिया जाता है।

8.383 लेकिन यदि कोई ब्राह्मण इन दोनों वर्णों की किसी रक्षित स्त्री के साथ व्यभिचार करता है, तो उस पर एक हजार पण का जुर्माना किया जाना चाहिए, और शूद्र स्त्री के साथ व्यभिचार करने पर क्षत्रिय या वैश्य पर भी एक हजार पण का जुर्माना किया जाना चाहिए।

8.384 यदि कोई वैश्य किसी रक्षित क्षत्रिय स्त्री के साथ व्यभिचार करता है तो जुर्माना पांच सौ पण होगा, लेकिन यदि कोई क्षत्रिय किसी वैश्य स्त्री के साथ व्यभिचार करता है तो उसका सिर मूत्र में मुंडवा देना चाहिए या उससे उल्लिखित जुर्माना लेना चाहिए।

हिंदू तथा गैर हिंदू अपराध न्याय शास्त्र में कितना विचित्र अंतर है। हिंदुत्व में कितनी असमानता है, यह उसके अपराध न्याय–शास्त्र में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। न्याय की भावना से युक्त दंड संहिता में हमें दो चीजें देखने को मिलती है। एक वह वर्ग जो अपराध को परिभाषित करने का कार्य करता है तथा दूसरा वह वर्ग जो अपराध करने के लिए दंड के न्यायोचित स्वरूप का निर्धारण और नियमों का निर्धारण करता है कि अपराध करने वाले सभी लोग समान दंड के अधिकारी है। लेकिन मनु में हम क्या पाते हैं? पहले तो दंड की प्रणाली न्यायोचित नहीं है। किसी अपराध का दंड संबंधित उद्गम अंग को दिया जाता है, जैसे पेट, जीभ, नाक, आंख, कान, जनन्द्रिय आदि, मानो कि अपराध करने वाले अंग की कोई अलग इच्छा हो और जो मानव की

Youtube पर Dravid Bharat Channel को Subcribe करें और दबायें।

अतिजीवी सत्ता नहीं है मनु की दंड–संहिता की दूसरी विशेषता यह है कि इसके अंतर्गत दंड की प्रकृति अमानवीय है, जो अपराध की गंभीरता से मेल नहीं खाती है। लेकिन उसकी सबसे अधिक विस्मयकारी विशेषता उस समय अपने विकराल रूप में दिखाई देती है, जब एक ही अपराध के लिए असमान दंड दिया जाता है। यह असमानता न केवल अपराधकर्ता को दंडित करने के लिए बनाई गई है, बल्कि मर्यादा की रक्षा करने और न्याय पाने के लिए न्यायालय में आने वाले पक्षों की अधीनता को बनाए रखने के लिए बनाई गई है, दूसरे शब्दों में, यह सामाजिक असमानता को बनाए रखने के लिए बनाई गई है। जिस पर उनकी पूरी योजना आधारित है।

क्रमिक असमानता का यह सिद्धांत आर्थिक क्षेत्र में भी घुसा बैठा है। हिंदू समाज–व्यवस्था का सिद्धांत यह नहीं है कि किसी की हैसियत के अनुसार लो और आवश्यकतानुसार दो। हिंदू समाज–व्यवस्था का सिद्धांत है, आवश्यकतानुसार लो और श्रेष्ठता के अनुसार दो। मानों कि कोई अधिकारी अकाल से पीड़ित लोगों का अनुदान बांट रहा हो, तो वह निम्न वर्ग के कामों की तुलना में उच्च वर्ग के लोगों को अधिक अनुदान देने के लिए बाध्य होगा। इसी तरह मानो कोई अधिकारी कर लगा रहा हो तो वह उच्च वर्ग के व्यक्ति पर कम कर लगाएगा और निम्न वर्ग के व्यक्ति पर अधिक कर लगाएगा। हिंदू समाज व्यवस्था समान आवश्यकता, समान कार्य, या समान योग्यता पर समान पाश्रिमिकता को मान्यता प्रदान नहीं करती है। जीवन में अच्छी चीजों के वितरण के संबंध में इसका एकमात्र लक्ष्य यह है कि जिन लोगों को सर्वश्रेष्ठ माना जाता है, उन्हें सबसे अधिक और सबसे अच्छा मिलना चाहिए और जो लोग निम्न वर्ग के अंतर्गत आते हैं उन्हें निम्नतम तथा निकृष्टतम पर ही संतोष कर लेना चाहिए।

यह सिद्ध करने के लिए और कुछ आवश्यक प्रतीत नहीं होता हो कि हिंदू समाज व्यवस्था वर्गीकृत असमानता के सिद्धांत पर आधारित हैं। यह सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों में व्यापक है। सामाजिक जीवन का प्रत्येक पक्ष समानता के खतरे के प्रति सचेत है।

हिन्दू समाज व्यवस्था का दूसरा सिद्धांत जिस पर हिन्दू समाज व्यवसाय आधारित है, वह प्रत्येक वर्ग के लिए व्यवसाय का निर्धारण और वंशानुक्रम के आधार पर उसके जारी रहने का सिद्धांत हैं मनु चारों वर्णों के व्यवसायों के बारे में ऐसा कहता है।

1.87 इस ब्रह्मांड की रक्षा करने हेतु, ईश्वन ने अपने मुंह, अपनी भुजा, अपनी जंघा तथा अपने पैरों से पैदा हुए लोगों के लिए अलग–अलग व्यवसाय (कर्म) निर्धारित किए।

1.88 ब्राह्मणों के लिए उसने पढ़ना और पढ़ाना (वेद), अपने तथा दूसरों के लाभ के लिए यज्ञ कराना और करना, दान देना और लेना, कर्म निर्धारित किए हैं।

1.89 लोगों की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, धार्मिक ग्रंथों को पढ़ना, व्यापार करना, ब्याज पर पैसा उधार देना, खेती करना जैसे कार्य निर्धारित किए गए हैं या उन्हें करने की अनुमति दी गई है।

1.90 वैश्यों के लिए पशुओं को पालना, दान देना, यज्ञ करना, धार्मिक ग्रंथों को पढ़ना, व्यापार करना, ब्याज पर पैसा उधार देना, खेती करना जैसे कार्य निर्धारित किए गए हैं या उन्हें करने की अनुमति दी गई है।

1.91 ब्रह्मा ने शूद्र के लिए जो एक सबसे प्रमुख कार्य सौंपा है, वह है बिना किसी उपेक्षाभाव के उक्त तीनों वर्गों की सेवा करना।

10.74 ऐसे ब्राह्मण जो उत्कृष्ट देवत्व प्रापत करने के इच्छुक हैं और अपने कर्तव्य के प्रति दृढ़ हैं, वे छह कार्यों को क्रमानुसार पूर्णरूपेण निष्पादित करें।

10.75 वेदों का अध्ययन करना, दूसरों को वेदों का अध्ययन कराना, दूसरो को यज्ञ करने में सहायता करना, अपने पास प्रचुर संपत्ति होने पर गरीबों को दान देना, स्वंय के गरीब होने पर सदाचारी लोगों से दान स्वीकार करना ये अग्रज वर्ग के छह निर्धारित कार्य हैं।

120.76 ब्राह्मण के इन छह कार्यों में से तीन कार्य उसकी जीविका से संबंधित है, यज्ञ करने में सहायता कराना, वेदों का अध्यापन तथा सदाचारी व्यक्ति से दान प्राप्त करना।

10.77 ये तीन कार्य ब्राह्मण के लिए सुरक्षित है, और उन्हें क्षत्रिय नहीं कर सकता, वेदों का अध्यापन, यज्ञ कराना तथा तीसरा, दान स्वीकार करना।

10.78 ये उपरोक्त तीनो कार्य (निर्धारित कानून के अनुसार) वैश्य के लिए निषिद्ध है, क्योंकि लोकाधिपति मनु ने क्षत्रिय और वैश्य, दोनों वर्गों के लिए इन कार्यों को निर्धारित नहीं किया है।

10.79 क्षत्रिय की जीविका के साधन है, जैसे शस्त्र धारण करना, या तो हमला करने के लिए या हाथ से चलाने वाले शस्त्र वैश्य के लिए व्यापार, पशु पालन तथा कृषि, लेकिन अपने अग्रिम जीवन को सफल बनाने के लिए भिक्षा देना, अध्ययन करना तथा यज्ञ कराना दोनों के कर्म हैं।

प्रत्येक सदस्य उस वर्ण–विशेष के लिए निर्धारित व्यापार को ही करेगा, जिस वर्ण का वह है। इसमें व्यक्तिगत चयन, व्यक्तिगत रुझान का कोई स्थान नहीं है। हिंदू समाज व्यवस्था से बंधा हुआ है। यह एक ऐसा कठोर नियम है कि इससे बचा नहीं जा सकता।

यह सिद्धांत व्यवसाय के निर्धारण तक ही सीमित नहीं रह जाता। यह कई व्यवसायों को उनके सम्मान की दृष्टि से श्रेणीबद्ध भी करता है। मनु कहता है :

10.80 जीविकोपार्जन के लिए अनेक व्यवसायों में से ब्राह्मणों क्षत्रियों, वैश्यों के लिए सबसे अधिक प्रशंसनीय व्यवसाय क्रमशः वेदों को पढ़ना व पढ़ाना लोगों की रक्षा करना तथा व्यापार करना है।

हिन्दू समाज व्यवस्था का तीसरा सिद्धांत जिस पर हिन्दू समाज व्यवस्था आधारित है, वह लोगों को उनके संबंधि वर्णों के खूंटे से बांधना है। यह कोई विचित्र बात नहीं है, कि हिंदू समाज–व्यवस्था वर्णों को स्वीकारती है। हर जगह वर्ग है और कोई भी समाज वर्गहीन समाज नहीं है। परिवार, दल क्लब, राजनीतिक दल, आपराधिक षड्यंत्रों में संलग्न अवैध गिरोह, लोगों को लूटने वाले व्यावसायिक निगम संसार के सभी भागों में तथा सभी समाजों में पाए जाते हैं। स्वतंत्र व्यवस्था भी वर्गों से छुटकारा नहीं पा सकती। स्वतंत्र समाज व्यवस्था का उद्देश्य व लक्ष्य पृक्किरण व अलगाव को रोकना होता है। जो वर्गों द्वारा अनुकरण करने के लिए एक आदर्श स्थिति मानी जाती है। चूंकि जो वर्ग पृथक्करण और अलगाव नहीं अपनाते हैं, वे एक दूसरे के प्रति अपने अपने संबंधों में असामाजिक माने जाते हैं। पृथक्करण और अलगाव उन्हें एक दूसरे के प्रति असामाजिक तथा विरोधी बना देते हैं। पृथक्करण से वर्ग–चेतना के संबंध में कठोरता आ जाती है, सामाजिक जीवन लामबंद हो जाता है और स्वार्थी तत्व आदर्शवादी तत्वों पर छा जाते हैं। पृथक्करण से जीवन गतिहीन हो जाता है, विशेषाधिकार–युक्त और गैर–विशेषाधिकार युक्त मालिक तथा नौकर के बीच अलगाव बना रहता है।

किसी समाज में वर्गों का होना स्वतंत्र समाज–व्यवस्था के लिए उतना प्रतिकूल नहीं है, जितना कि पृथक्करण और अलगाव की भावना। स्वतंत्र समाज व्यवस्था के अंतर्गत समाज में समरसता की धारा प्रवाहित रहती है। यह केवल तभी संभव है, जब वर्गों को सामान्य हितों, उत्तरदायित्वों में भागीदारी करने का अवसर मिले और सामान्य रूप से जीवन मूल्यों का अधिकार मिले, यदि चारों ओर स्वतंत्र व्यवस्था हो जाए जिसके अंतर्गत लेन–देन के समान अवसर उपलब्ध हो, तो ऐसे समाज संबंधों से रीति रिवाज, मानसिक दृष्टिकोण सजग तथा व्यापक होता है और इसके लिए काल ही नहीं, विचारों की गतिशीलता की आवश्यकता है। हिंदू समाज–व्यवस्था के बारे में जो चीज ध्यान आकर्षित करती है, वह हिंदु समाज के विभिन्न वर्गों के बीच आंतरिक विवाह पर प्रतिबंध रोक है इसके अंतर्गत दूसरी जाति के साथ भोजन करने और अंतर्जातीय विवाह पर प्रतिबंध है। लेकिन मनु तो सामान्य सामाजिक संसर्ग क का निषेध करता है। मनु के अनुसारः

4.244 वंश को उन्नत करने की इच्छा करने वाला सर्वदा बड़ों के साथ संबंध करे और अपने से नीचों को छोड़ दें।

4.245 बड़ों के साथ संबंध करता हुआ और नीचों का त्याग करता हुआ ब्राह्मण श्रेष्ठता को पाता है। इसके विरुद्ध आचरण करता हुआ शूद्रता को पाता है।

4.79 उसे बड़े अपराधों के लिए जाति से निष्कासित पतित व्यक्ति, चांडाल, पुल्कस, मूर्ख धन के कारण अभिमानी, अन्तयज और अन्त्यावासी के साथ एक ही वृक्ष की छांव में नहीं बैठना चाहिए।

हिंदू समाज–व्यवस्था भाईचारे के खिलाफ हैं इसमें समानता के सिद्धांत को कोई स्थान नहीं है। समानता को मान्यता प्रदान करने के बजाय यह असमानता को अपना अधिकारिक सिद्धांत बनाती है। स्वतंत्रता के बारे में स्थिति यह है कि व्यवसाय के चयन के बारे में कोई स्वतंत्रता नहीं है। प्रत्येक का उसके लिए निर्धारित अपना व्यवसाय है। उसे तो बस वही करते रहना है। जहां तक अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का सवाल है, यह स्वतंत्रता है, लेकिन यह केवल उन्हीं लोगों के लिए है, जो समाज व्यवस्था के पक्षधर हैं। ऐसी स्वतंत्रता नहीं है जिसके बारे में वाल्टेयर ने कहा था, आप जो कुछ भी कहते हैं मैं उसे पूरी तरह से अस्वीकृत करता हूं और मैं मरते दम तक ऐसा कहने से इस अधिकार की रक्षा करूंगा। यह उस समय स्पष्ट हो जाता है, जब मनु तर्क–शास्त्र तथा न्याय के बारे कहता है :

4.29–30 जिस गृहस्थ के घर में शक्ति के अनुसार, आसन, भोजन, शैया जल और कंद मूल से अतिथि का सम्मान नहीं होता, उसमें कोई अतिथि निवास न करे।

उसे विधर्मी, वे व्यक्ति जो निषिद्ध व्यवसाय करते हैं, वे लोग जो बिल्लियों, दुष्टों तर्क शास्त्रियों (वेदों के खिलाफ बहस करने वाले) और वक की तरह रहते हैं, ऐसे लोगों द्वारा किए जाने वाले सम्मान को स्वीकार नहीं करना चाहिए।

2.10 वेद को श्रुति और धर्म–शास्त्र को स्मृति जानना चाहिए, वे सभी विषयों में तर्क के योग्य नहीं है, क्योंकि उन दोनों में ही धर्म का प्रादुर्भाव होता है।

2.11 प्रत्येक द्विज, जो न्यायविदों पर निर्भर करता है, और तर्कशास्त्र तथा उपचार इन दोनों श्रोतों (कानून के) को घृणा की दृष्टि से देखता है, वेद–निदंक वह मनुष्य सज्जनों द्वारा बहिष्कृत करने योग्य है।

2.12 वेद, पवित्र स्मृति, आचार और मन की प्रसन्नता ये चार धर्म के साक्षात लक्षण हैं।

इसका कारण उस समय स्पष्ट हो जाता है, जब मनु कहता है :

2.6 सब वेद, उनको जानने वालों की स्मृति और ब्राह्मणत्व, महात्माओं का आचरण और अपने मन की प्रसन्नता – ये सब धर्म के मूल हैं।

2.7 मनु ने जिस किसी का जो धर्म कहा है, वह धर्म वेदों में कहा गया है। मनु सब वेदों के अर्थों के ज्ञाता है।

इस स्वतंत्रता में न्यायविदों के लिए कोई स्वतंत्रता नहीं है, तर्कशास्त्रियों के लिए समाज–व्यवस्था की समालोचन की भी स्वतंत्रता सही है, जिसका तात्पर्य यह है कि कहीं भी कोई स्वतंत्रता नहीं है।

कार्य करने की स्वतंत्रता की स्थिति कैसी है? कार्य–चयन के मामले में हिंदू समाज–व्यवस्था में कोई स्थान नहीं है। हिंदू समाज–व्यवस्था व्यक्ति को कोई अधिकार नहीं देती है उसके व्यवसाय को स्वंय निर्धारित करती है यह उसकी हैसियत भी निर्धारित करती है। व्यक्ति विशेष को तो विधान का पालन ही करना होता है।

ठीक यही बात राजनीतिक स्वतंत्रता के बारे में कही जा सकती है। हिन्दू समाज–व्यवस्था में लोगों द्वारा चुने गए प्रतिनिधियां से बनही प्रतिनिधि सरकार की आवश्यकता को कोई मान्यता नहीं दी जाती। प्रतिनिधि सरकार इस सिद्धांत पर आधारित होती है कि लोगों पर कानून का राज्य हो और कानून लोगों के प्रतिनिधियों द्वारा ही बनाया जा सकता है। समाज–व्यवस्था में इस प्रतिपाद्य विषय के प्रथम भाग को ही मान्यता प्रदान की है, जिसके अनुसार लोगों के ऊपर कानून का राज्य होगा। लेकिन यह इस प्रतिपाद्य विषय के दूसरे भाग की उपेक्षा करती है, जिसके अनुसार नियम (कानून) लोगों द्वारा चुने गए प्रतिनिधियों द्वारा ही बनाए जा सकते हैं। हिंदू समाज–व्यवस्था का सिद्धांत यह है कि जिस कानून के द्वारा लोग शासित होते है, वह कानून पहले से ही बना हुआ है और वह वेदों में उपलब्ध है। किसी को भी इस कानून में संशोधन का अधिकार नहीं है। ऐसा होने के कारण लोगों द्वारा चुनी गई प्रतिनिधि सभा अनावश्यक हो जाती है। राजनीतिक स्वतंत्रता वह स्वतंत्रता होती है, जिसमें कानून बनाने की स्वतंत्रता होती है और सरकार को बनाये या बदलने का कोई तात्पर्य नहीं है जिसके लिए हिंदू समाज–व्यवस्था में स्थान ही नहीं है।

संक्षेप में, हिंदू समाज–व्यवस्था एक ऐसी व्यवस्था है, जो वर्णों पर आधारित है, न कि व्यक्तियों पर। यह वह व्यवस्था है, जिसमें वणों को एक–दूसरे के ऊपर श्रेणीबद्ध किया गया है। यह एक ऐसी व्यवस्था है, जिसमें वर्णों की प्रतिष्ठा तथा कार्य–निर्धारण निश्चित है। हिंदू समाज–व्यवस्था एक कठोर सामाजिक प्रणाली है। इस बात से उसे कोई लेना–देना नहीं कि किसी व्यक्ति के पद और प्रतिष्ठा में अपेक्षाकृत परिवर्तन हो, लेकिन वह जिस वर्ण में पैदा हुआ है, उस वर्ण के सदस्य के रूप में उसकी सामाजिक स्थिति दूसरे वर्ण के दूसरे व्यक्ति के संदर्भ में किसी भी तरह से प्रभावित नहीं होगी। उच्च वर्ण में जन्में और निम्न वर्ण में जन्में व्यक्ति की नियति उसका जन्मजात वर्ण ही है।

साभार :
बाबा साहेब डा. अम्बेडकर
संपूर्ण वाङ्मय खण्ड 6
पेज संख्या 123 से 146 तक
बाबा साहेब डा. अम्बेडकर

Youtube पर Dravid Bharat Channel को Subcribe करें और 🔔 दबायें।

पाँचवा भाग – बुद्ध और उनके पूर्वज

1. बुद्ध और वैदिक ऋषि

1. वेद, मंत्रों अर्थात् ऋचाओं या स्तुतियों का संग्रह है। इन ऋचाओं का उच्चारण करने वालों को 'ऋषि' कहते हैं।
2. मन्त्र देवताओं को सम्बोधन करने की गई प्रार्थनाओं के अतिरिक्त कुछ नहीं है जैसे, इन्द्र, वरुण, अग्नि, सोम, ईशान, प्रजापति, ब्रह्म, महर्षि, यम तथा यम।
3. प्रार्थनायें प्रायः शत्रुओं से रक्षा व शत्रुओं के विरुद्ध सहायता प्राप्त करने के लिये है, धन प्राप्ति के लिये है, भक्तों से भोजन, मांस और सुरा की भेंट स्वीकार करने के लिये हैं।
4. वेदों में दर्शन की मात्रा कुछ विशेष नहीं है। लेकिन कुछ वैदिक ऋषियों के गीत हैं जिनमें कुछ दार्शनिक ढंग की काल्पनिक उड़ान दिखाई देती है।
5. इन वैदिक ऋषियों के नाम है : (1) अघमर्षण, (2) प्रजापति परमेष्ठी, (3) ब्रह्मणस्पति वा बृहस्पति, (4) अनिल, (5) दीर्घतमा, (6) नारायण, (7) हिरण्यगर्भ तथा (8) विश्वकर्मा।
6. इन वैदिक दार्शनिकों की मुख्य समस्यायें थीं : यह संसार कैसे उत्पन्न हुआ? अलग–अलग चीजें कैसे उत्पन्न की गई? उनकी एकता और अस्तित्व क्यों है? किसने उत्पन्न की और किसने व्यवस्था की? यह संसार किसमें से उत्पन्न हुआ और फिर किसमें विलीन हो जाएगा?
7. अघमर्षण का कथन था कि संसार की उत्पत्ति तपस (ताप) से हुई है। तपस ही एक नित्य तत्व है जिससे नित्य धर्म और ऋत (= सत्य) की उत्पत्ति हुई है। इन्हीं से तम (अंधकार, रात्रि) की उत्पत्ति है। तम से जल की उत्पत्ति हुई और जल से काल की। काल से ही सूर्य और चन्द्रमा पैदा हुए तथा द्यौ और पृथ्वी ने जन्म धारण किया। काल ने ही अन्तरिक्ष को प्रकाश को जन्म दिया तथा रात और दिन की व्यवस्था की।
8. ब्रह्मणस्पति की कल्पना थी कि सृष्टि असत् के सत् रूप में आई। असत् से कदाचित उसका आशय अनंत से था। सत् मूल रूप से असत् से ही उत्पन्न हुआ समस्त सत् का मूलाधार असत् ही था और उस समस्त भावी सत् का जो इस समय असत् है।
9. प्रजापति परमेष्ठी ने जिस समस्या को उठाया वह थी कि क्या सत् की उत्पत्ति असत् से हुई? उसका मत था कि इस प्रश्न का प्रस्तुत विषय में कोई सम्बन्ध नहीं। उसके मत के अनुसार समस्त जगत का मूलाधार जल है। उसकी दृष्टि से जो जगत का मूलाधार–जल है वह न सत् के अन्तर्गत आता है और न असत् के।
10. परमेष्ठी ने जड़तत्व और चेतन को लेकर कोई विभाजक रेखा नहीं खींची। उसके मत के अनुसार किसी निहित तत्व के ही कारण जल भिन्न–भिन्न वस्तुओं का आकार ग्रहण करता है। उसने इस निहित–तत्व को 'काम' कहा है– विश्व–व्यापी इच्छा शक्ति।
11. एक दूसरे वैदिक दार्शनिक का नाम था अनिल। उसके लिये वायु ही मुख्य तत्व था। इसमें चलन अन्तर्निहित था। उसी में उत्पन्न करने की शक्ति है।
12. दीर्घतमा का मत था कि अन्त में सभी चीजों का मूलाधार सूर्य है। सूर्य अपनी अन्तर्निहित शक्ति से ही आगे पीछे सरकता है।
13. सूर्य किसी भूरी शक्ल के पदार्थ से निर्मित है और वैसे ही विद्युत तथा अग्नि।
14. सूर्य, विद्युत और अग्नि में जल का बीजांकुर विद्यमान है और जल पौधों का बीजाङकुर है। ऐसा ही कुछ दीर्घतमा का मत था।
15. नारायण के मत के अनुसार पुरुष ही जगत का आदि कारण है। पुरुष से ही सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, अन्तरिक्ष, आकाश, क्षेत्र, ऋतु, वायु के जीव, सभी प्राणी, सभी वर्गों के मनुष्य तथा सभी मानवीय संस्थान उत्पन्न हुए हैं।
16. हिरण्य–गर्भ सिद्धान्त की दृष्टि से हिरण्य–गर्भ परमेष्ठी और नारायण के बीच में था। हिरण्य–गर्भ का मतलब है स्वर्ण–गर्भ। यही विश्व की वह महान् शक्ति थी, जिसे तमाम दूसरी पार्थिव तथा दिव्य शक्तियों तथा अस्तित्व का मूल स्त्रोत माना जाता था।
17. हिरण्य–गर्भ का अर्थ अग्नि भी है। यह अग्नि ही है जो सौर–मण्डल का उपादान कारण है, विश्व का उत्पादक शक्ति।
18. विश्वकर्मा की सृष्टि में यह मानना की जल ही हर वस्तु के मूल में है और जल ही से समस्त संसार की उत्पत्ति हुई है, ऐसा समझना और यह समझना कि संचरण उसका स्वभाव–धर्म ही है, योग्य नहीं था। यदि हम जल को ही मूल उपादान माने तो पहले हमें यह बताना होगा कि जल की उत्पत्ति कैसे हुई और जल में वह शक्ति, वह उत्पादक शक्ति कहाँ से आई और पृथ्वी, आप, तेज, आदि की यह शक्तियाँ, अन्य नियम और शेष सब कुछ कैसे अस्तित्व में आयें?
19. विश्वकर्मा का कहना था कि 'पुरूष' ही है जो सब किसी का मूलाधार है। 'पुरुष' आदि में है, 'पुरुष' अन्त में है। वह इस दृश्य संसार के पहले से हैं, इन सभी विश्व–शक्तियों के अस्तित्व में आने से भी पहले से उसका अस्तित्व है। अकेले पुरुष द्वारा ही यह विश्व उत्पन्न है और संचलित है। पुरुष एक और केवल एक है। वह अज है और उसी में सभी उत्पन्न चीजों का निवास है। वही है जिसका चेतस् भी महान् है और सामर्थ्य भी महान् है। वही उत्पन्न करने वाला है, वही विनाश करने वाला है। पिता की हैसियत से उसने हमें उत्पन्न किया और यमराज की तरह वह हम सब में अन्त से परिचित है।
20. बुद्ध सभी वैदिक ऋषियों को आदरणीय नहीं मानते थे। वह उनमें से कोई दस ही ऋषियों को सर्वाधिक प्राचीन तथा मन्त्र रचयिता मानते थे।
21. लेनिक उन मन्त्रों में उन्हें ऐसा कुछ नहीं दिखाई दिया जो मानव के नैतिक उत्थान में सहायक हो सके।
22. बुद्ध की दृष्टि में वेद बालू के कान्तार के समान निष्प्रयोजन थे।
23. इसलिये बुद्ध ने वेदों को इस योग्य नहीं समझा कि उनसे कुछ सीखा जा सके वा ग्रहण भी किया जा सके।
24. इसी प्रकार बुद्ध को वैदिक ऋषियों के दर्शन में भी कुछ सार नहीं दिखाई देता था। निस्सन्देह उन्हें (ऋषियों को) सत्य की खोज थी। वे उसे अन्धेरे में टटोल रहे थे। किन्तु उन्हें सत्य मिला न था।
25. उनके सिद्धान्त केवल मानसिक उड़ाने थी, जिनका तर्क या यथार्थ बातों से कोई सम्बन्ध न था। दर्शन के क्षेत्र में उन्होंने किसी नये सामाजिक–चिन्तन की देन नहीं दी।
26. इसलिये उसने वैदिक ऋषियों के दर्शन को बेकार जान उसकी सम्पूर्ण रूप से अवहेलना की।

2. कपिल – दार्शनिक

1. प्राचीन भारतीय दार्शनिकों में कपिल सर्वाधिक प्रधान है।
2. उसका दार्शनिक दृष्टिकोण अनुपम था। वह एक अकेला दार्शनिक नहीं था, वह अपने में मानों एक दार्शनिक वर्ग ही था।
3. उसका दर्शन सांख्य–दर्शन कहा जाता था।
4. उसकी दार्शनिक मान्तायें चौंका देने वाली थीं।
5. सत्य के लिये प्रमाण आवश्यक है। सांख्य का यह प्रथम सिद्धान्त है। बिना प्रमाण के सत्य का अस्तित्व नहीं।
6. सत्य को सिद्ध करने के लिये कपिल ने केवल दो प्रमाण स्वीकार किये – (1) प्रत्यक्ष और अनुमान।
7. प्रत्यक्ष से मतलब है (इन्द्रियों के माध्यम से) विद्यमान वस्तु की चित्त को जानकारी।
8. अनुमान तीन प्रकार का है – (1) कारण से कार्य का अनुमान, जैसे बादलों के अस्तित्व से वर्षा का अनुमान लगाया जा सकताहै ; (2) कार्य से कारण का अनुमान, जैसे यदि नीचे नहीं में बाढ़ दिखाई दे तो हम ऊपर पहाड़ पर वर्षा होने का अनुमान लगा सकते हैं, (3) सामान्यतोदृष्ट अनुमान जैसे हम आदमी के एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने से यह समझते हैं कि वह स्थान– परिवर्तन करता है, उसी प्रकार हम तारों को भी भिन्न–भिन्न जगहों पर देखकर यह अनुमान लगाते हैं कि वे भी स्थान परिवर्तित होते हैं।
9. उसका अगला सिद्धान्त सृष्टि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में था। सृष्टि की उत्पत्ति और उसका कारण।
10. कपिल को किसी सृष्टि–कर्ता का अस्तित्व स्वीकार न था। उसका मत था कि उत्पन्न वस्तु पहले से ही अपने कारण में विद्यमान रहती है जैसे मिट्टी से बरतन बनता है अथवा धागों से एक कपड़े का टुकड़ा बनता है।
11. यह एक तर्क था जिसकी वजह से कपिल को किसी सृष्टि–कर्ता का अस्तित्व मान्य न था।
12. उसने अपने मत के समर्थन में और भी तर्क दिये हैं।
13. असत् भी किसी कार्य का कारण नहीं हो सकता। वास्तव में नई उत्पत्ति कुछ होती ही नहीं। वस्तु उस सामग्री के अतिरिक्त और कुछ नहीं है जिससे वह निमित हुई हैः वस्तु अपने अस्तित्व में आने से पहले उस सामग्री के रूप में विद्यमान रहती है कि जिससे उसका निर्माण होता है। किसी एक निश्चित सामग्री से किसी एक निश्चित वस्तु का ही निर्माण हो सकता है। और केवल एक निश्चित सामग्री ही किसी निश्चित वस्तु के रूप में परिणति को प्राप्त हो सकती है।
14. तो इस वास्तविक संसार का मूल स्त्रोत क्या है?
15. कपिल का कहना था कि वास्तविक संसार के दो रूप हैं – (1) व्यक्त (= विकसित) तथा अव्यक्त (= अविकसित)
16. व्यक्त वस्तु अव्यक्त वस्तुओं का स्त्रोत नहीं हो सकती।
17. व्यक्त वस्तुएँ ससीम होती है और यह सृष्टि के मूल स्त्रोत बमेल है।
18. तमाम व्यक्त वस्तुएँ परस्पर समान होती हैं। इसलिये कोई भी एक व्यक्त वस्तु किसी दूसरी व्यक्त वस्तु का स्त्रोत नहीं मानी जा सकती। और फिर क्योंकि वे स्वयं किसी एक ही मूल स्त्रोत से उत्पन्न होती हैं, इसलिए वे स्वयं वह मूल स्त्रोत नहीं हो सकती।
19. कपिल का दूसरा तर्क था कि एक कार्य को अपने कारण से भिन्न होना ही चाहिये – यद्यपि उस कार्य के कारण निहित रहता ही है। जब यह ऐसा है तो विश्व स्वयं ही अन्तिम कारण नहीं हो सकता। इसे किसी अन्तिम कारण का परिणाम होना चाहिये।
20. जब पूछा गया कि अव्यक्त की अनुभूति क्यों नहीं होती, इसकी कोई भी किया इन्द्रिय–गोचर क्यों नहीं होती, तो कपिल का उत्तर था :–
21. यह अनेक कारणों से हो सकता है। हो सकता है अनेक दूसरी अतिसूक्ष्म वस्तुओं की तरह जिनकी सीधी अनुभूति नहीं होती, इसकी भी अनुभूति न होती हो, अथवा अत्यधिक दूरी के कारण अनुभूति न होती हो, अथवा अनुभूति में कोई एक तिसरी वस्तु बाधक हो, अथवा किसी तादृश वस्तु की मिलावट हो, अथवा किसी तीव्रतर वेदना (= अनुभूति) के कारण अनुभूति न होती हो, अथवा अन्धेपन वा किसी अन्य इन्द्रिय–दोष के कारण अनुभूति न होती हो अथवा द्रष्टा के मस्तिष्क की विकलता के ही कारण अनुभूति न होती हो।
22. जब पूछा गया तो विश्व का मूल स्त्रोत क्या है? विश्व के व्यक्त रूप अव्यक्त–रूप में क्या अन्तर है?
23. कपिल का उत्तर था– ''व्यक्त रूप का भी कारण होता है तथा अव्यक्त रूप का भी कारण होता है। लेकिन दोनों के मूल स्त्रोत स्वतंत्र हैं और उनका कोई कारण नहीं।''
24. व्यक्त वस्तुओं की संख्या अनेक है। वे देश काल से सीमित हैं। उनका स्त्रोत एक ही है वह नित्य है और सर्वव्यापक है। व्यक्त वस्तुएँ क्रियाशील होती है, उनके अंग व हिस्से होते हैं। सबका मूल–स्त्रोत सटा ही रहता है, लेकिन न वह क्रियाशील होता है और न उसके अंग व हिस्से होते हैं।
25. कपिल का तर्क था कि अव्यक्त की व्यक्त में परिणति उन तीन गुणों की क्रियाशीलता का परिणाम है जिनसे उसका निर्माण हुआ हैं। वे तीन गुण हैं, सत्व, रज, तम।
26. इन तीन गुणों में प्रथम अर्थात् सत्व प्रकृति में प्रकाश के समान है जो प्रकट करता है, जो मनुष्यों को सुख देता है, दूसरा गुण रज है जो प्रेरित करता है, जो संचालित करता है, जो क्रियाशीलता का कारण होता है, तीसरा गुण तम है जो भारीपन का द्योतक है, जो रोकता है, जो उपेक्षा व निष्क्रियता को उत्पन्न करता है।
27. तीनों गुण परस्पर सम्बद्ध होकर ही क्रियाशील होते हैं। वे एक दूसरे पर हावी हो जाते हैं। वे एक दूसरे के सहायक होत हैं। वे एक दूसरे से मिले रहते हैं। जिस प्रकार लौ, तेल और बत्ती के परस्पर सहयोग से ही दीपक जलता है, उसी प्रकार यह तीनों गुण भी मिलकर ही क्रियाशील होते हैं।
28. जब तीनों गुण एकदम बराबर मात्रा में होते हैं, कोई भी एक गुण दूसरे पर हावी नहीं होता, उस समय यह विश्व अचेतन प्रतीत होता है, उसमें विकास नहीं होता।
29. जब तीनों गुण एकदम बराबर मात्रा में नहीं होते, एक गुण दूसरे पर हावी हो जाता है, तब विश्व सचेतन हो जाता है, उसमें विकास होना आरम्भ हो जाता है।
30. यह पूछे जाने पर कि गुणों की मात्रा में कमी–वेशी क्यों हो जाती है, कपिल का उत्तर था कि उसका कारण दुःख है।
31. कपिल के दर्शन के सिद्धान्त कुछ–कुछ ऐसे ही थे।
32. अन्य सभी दार्शनिक की अपेक्षा बुद्ध कपिल के सिद्धान्तों से ही विशेष रूप से प्रभावित थे।
33. कपिल ही एक ऐसा दार्शनिक था जिसकी शिक्षायें बुद्ध को तर्कसंगत और कुछ–कुछ यथार्थता पर आश्रित जान पड़ी।
34. लेकिन बुद्ध ने कपिल की सभी शिक्षाओं को स्वीकार नहीं किया। कपिल की उन्हें केवल तीन ही बातें ग्राह्य थीं।
35. उन्हें यह बात मान्य थी कि सत्य प्रमाणाश्रित होना चाहिये। यथार्थता का आधार बुद्धिवाद होना चाहिये।
36. उन्हें यह बात मान्य थी कि किसी ईश्वर के अस्तित्व व उसके सृष्टिकर्त्ता होने का कोई तर्कानुकूल तथा यथार्थताश्रित कारण विद्यमान नहीं है।
37. उन्हें यह बात मान्य थी कि संसार में दुःख है।
38. कपिल की शेष शिक्षाओं की उन्होंने उपेक्षा की क्योंकि उनका उनके लिये कोई उपयोग न था।

3. ब्राह्मण–ग्रन्थ

1. वेदों के बाद उस धार्मिक–साहित्य का नम्बर आता है जो ब्राह्मण–ग्रन्थों के नाम से प्रसिद्ध हैं। दोनों ही पवित्र ग्रन्थ माने जाते थे। वास्तव में ब्राह्मण भी वेदों का एक भाग ही हैं। दोनों साथ–साथ हैं और दोनों का एक सम्मिलित नाम 'श्रुति' है।
2. ब्राह्मणों के दर्शन के चार स्तम्भ है।
3. सब से पहला स्तम्भ है कि वेद न केवल पवित्र है, बल्कि अपौरुषेय है। उनके किसी एक भी शब्द पर प्रश्न–चिह्न नहीं लग सकता।
4. ब्राह्मणी–दर्शन का दूसरा स्तम्भ वा दूसरी आधार–शिला थी कि आत्मा की मुक्ति जन्म–मरण के संबंध से वा संसरण से मुक्ति वैदिक यज्ञों तथा दूसरी धार्मिक क्रियाओं के उचित ढंग से पूरा करने और ब्राह्मणों को दान देने से ही हो सकती।
5. 'ब्राह्मणों' के पास न केवल एक आदर्श–धर्म की ही कल्पना थी, बल्कि उन्होंने अपनी एक 'आदर्श–समाज' की कल्पना भी गढ़ रखी थी।

Youtube पर Dravid Bharat Channel को Subcribe करें और दबायें।

6. इस ''आदर्श–समाज'' के ढांचे का उनका अपना नाम था चातुर्वर्ण। यहां वेदों में जुड़ा हुआ है, और क्योंकि वेद तर्कातीत है और क्योंकि वेदों के किभी भी शब्द पर प्रश्न–चिन्ह लग ही नहीं सकता, इसलिए एक आदर्श–समाज के नमूने के रूप में चातुर्वर्ण भी तर्कातीत है और उस पर भी अंगुली नहीं उठाई जा सकती।

7. समाज के इस नमूने के कुछ आधार भूत नियम हैं।

8. पहला नियम था कि समाज चार भागों में विभक्त होना चाहिए। (1) ब्राह्मण (2) क्षत्रिय , (3) वैश्य और (4) शूद्र।

9. दूसरा नियम था कि इन चारों वर्गों में सामाजिक समानता नहीं हो सकती। इन सबको कमिक असमानता के नियम से परस्पर बंधा रहना होगा।

10. ब्राह्मण सर्वोपरि। ब्राह्मणों के नीचे क्षत्रिय, किन्तु वैश्यों के ऊपर। क्षत्रियों के नीचे वैश्य किन्तु शूद्रों से ऊपर। सब के नीचे शूद्र।

11. यह चारो वर्ग अधिकार और विशेष सुविधाओं के मामले में एक दूसरे से समानता का दावा नहीं कर सकते थे। अधिकारों और विशेष–सुविधाओं का उपयोग कमिक असमानता के नियम के अनुसार ही हो सकता था।

12. ब्राह्मण को वह सभी अधिकार और विशेष–सुविधाएँ प्राप्त थीं जिनकी वह इच्छा कर सकता था। लेकिन एक क्षत्रिय उन्हीं अधिकारों और विशेष सुविधाओं की मांग नहीं कर सकता था जो एक ब्राह्मण को प्राप्त थीं। एक वैश्य की अपेक्षा उसे अधिक अधिकार और सुविधायें प्राप्त थीं। लेकिन वह उन्हीं अधिकारों और विशेष–सुविधाओं की मांग नहीं कर सकता था जो एक क्षत्रिय को प्राप्त थी। और जहां तक शूद्र की बात है, उसे किसी विशेष सुविधा का तो कहना ही क्या कोई अधिकार ही नहीं प्राप्त था। उसके लिए यही बहुत था कि वह ऊपर के तीनों वर्गों को बिना रूष्ट किये किसी न किसी तरह जीता रहा सके।

13. चातुर्वर्ण्य के तीसरे नियम का सम्बन्ध पेशों वा जीविका के साधनों से था ब्राह्मण को पेशा था पढ़ना, पढ़ाना और धार्मिक–संस्कार करना। क्षत्रिय का पेशा था लड़ना, मरना–मारना। वैश्य का पेशा था व्यापार। शूद्र का पेशा था ऊपर के तीनों वर्गों की सेवा करना। इस चारों वर्गों का यह विभाजन ऐसा न था कि एक वर्ग किसी दूसरे का पेशा कर सके। हर वर्ग केवल अपना अपना ही पेशा कर सकता था। कोई भी एक वर्ग किसी दूसरे के पेशे में दखल न दे सकता था।

14. चातुर्वर्ण्य का चौथा नियम शिक्षा के अधिकार से सम्बन्धित था। चातुर्वर्ण्य के नमूने के अनुसार केवल पहले तीन वर्ग– ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य – ही शिक्षा के अधिकारी थे। शूद्रों के लिये शिक्षित होना निषिद्ध था। इस चातुर्वर्ण्य के नियम ने केवल शूद्रों के ही शिक्षित होने को वर्जित नहीं किया था, बल्कि सभी स्त्रियों के शिक्षित होने को वर्जित किया था, जिनमें ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों तथा शूद्रों की भी स्त्रियाँ शामिल थीं।

15. एक पांचवाँ नियम भी था। इसके अनुसार आदमी के जीवन के चार हिस्से किये गये थे। पहली अवस्था ब्रह्मचर्य्याश्रम थी, दूसरी अवस्था गृहस्थाश्रम कहलाती थी, तीसरी वानप्रस्थाश्रम और चौथी सन्यासाश्रम।

16. प्रथम आश्रम का उद्देश्य था अध्ययन और शिक्षा। दूसरे आश्रम का उद्देश्य था वैवाहिक जीवन व्यतीत करना। तीसरे आश्रय का उद्देश्य था आदमी को वन–वासी जीवन से परिचित कराना– बिना गृह–त्याग किये पारिवारिक बन्धनों से मुक्त हो जाना। चौथे आश्रम का उद्देश्य था ईश्वर की खोज और उससे मिलने का प्रयास।

17. इन आश्रमों से तीनों ऊंचे वर्गों के पुरुष–मात्र लाभान्वित हो सकते थे। शूद्रों और स्त्रियों के लिए पहला आश्रम वर्जित था। इसी प्रकार शूद्रों और स्त्रियों के लिए अन्तिम आश्रम भी वर्जित था।

18. ऐसा था यह दिव्य 'आदर्श–समाज' का नमूना जिसे चातुर्वर्ण्य का नाम दिया गया था। ब्राह्मणों ने इस नियम को ऊंचे आदर्शवाद में परिणत कर दिया था और इस बात की पूरी सावधानी रखी थी कि इसमें कहीं कोई कोर–कसर न बाकी रह जाय।

19. ब्राह्मणी दर्शन का एक चौथा स्तम्भ था 'कर्म' का सिद्धान्त। यह आत्मा के संसरण के सिद्धान्त का एक भाग था। ब्राह्मणों का 'कर्म–वाद' इस एक प्रश्न का उनकी ओर से दिया गया उत्तर था– ''जन्मान्तर होने पर नये शरीर को लेकर आत्मा कहा नया जन्म ग्रहण करती है?'' ब्राह्मणी दर्शन का उत्तर था कि ''यह उसके पिछले जन्म के कर्मों पर निर्भर करता है।'' दूसरे शब्दों में इसका यही मतलब है कि यह उसके कर्मों का परिणाम है।

20. ब्राह्मणी धर्म के प्रथम सिद्धान्त के बुद्ध कड़े विरोधी थे। उन्होंने ब्राह्मणों के इस सिद्धान्त का खण्डन किया कि वेद अपौरुषेय हैं और उन पर प्रश्न चिह्न नहीं लग सकता।

21. उनकी सम्मति में कोई बात ऐसी हो ही नहीं सकती जो गलत होने की सम्भावना से परे हो। किसी भी विषय में कोई बात अन्तिम हो ही नहीं सकती। यथावश्यकता समय–समय पर हर बात का परीक्षण हो सकना चाहिये।

22. आदमी को सत्य और यथार्थ सत्य जानना चाहिये। बुद्ध के लिए विचार–स्वातन्त्र्य ही सत्य को प्राप्त करने का एकमात्र साधन है।

23. वेदों की अपौरुषेयता को मान लेने का मतलब था विचार–स्वातन्त्र्य को सर्वथा अस्वीकार कर देना।

24. इन्हीं कारणों से ब्राह्मणी–दर्शन की उक्त स्थापना उन्हें सर्वाधिक अप्रिय थी।

25. बुद्ध को ब्राह्मणी–दर्शन की दूसरी स्थापना भी उतनी ही अप्रिय थी। बुद्ध ने यह तो स्वीकार किया कि ''यज्ञ'' करना भी उचित है, किन्तु उन्होंने 'सच्चे यज्ञ' और 'झूठे यज्ञ' में विभाजक रेखा खींच दी।

26. दूसरों के कल्याण के लिये 'आत्म–परित्याग' को ही बुद्ध ने ''सच्चा यज्ञ'' माना। आत्म–स्वार्थ के लिये किसी देवता को प्रसन्न करने के उद्देश्य से किसी पशु की बलि देना बुद्ध ने ''झूठा यज्ञ'' बताया।

27. अधिकांश ब्राह्मणी ''यज्ञ'' देवताओं को प्रसन्न करने के लिये दी जाने वाली पशुओं की बलियां ही थीं। बुद्ध ने इन्हें ''झूठ यज्ञ'' कहकर इनकी निन्दा की। यज्ञ यदि ''आत्मा'' के 'मोक्ष' लाभ के लिए ही किये जायें तो भी बुद्ध उसके करने के पक्ष में न थे।

28. यज्ञ–विरोधी लोग यह कह कर ब्राह्मणों का उपहास किया करते थे, ''यदि कोई एक पशु की बलि देने से 'स्वर्ग' जा सकता है, तो फिर शीघ्रतर स्वर्ग जाने के लिये अपने पिता का ही बलिदान क्यों नहीं किया जाता?''

29. बुद्ध इस मत से सर्वथा सहमत थे।

30. ''यज्ञ'' का सिद्धान्त बुद्ध को जितना बुरा लगता था उतनी ही बुरी बुद्ध को यह चातुर्वर्ण्य की स्थापना लगती थी।

31. ब्राह्मणवाद ने चातुर्वर्ण्य के नाम पर जिस प्रकार के समाज–संगठन की कल्पना की, वह बुद्ध को सर्वथा अप्राकृतिक लगता था। इसका वर्गाश्रित स्वरूप अनिवार्य था और मनमाना था। यह किसी के हुक्म से रच दिये गये समाज के समान था। बुद्ध एक खुले और एक स्वतन्त्र–समाज के पक्षपाती थे।

32. ब्राह्मण–वाद का चातुर्वर्ण्य एक जड़ समाज–रचना थी, अपरिवर्तनशील। एक बार ब्राह्मण के घर में जन्म ले लिया, हमेशा के लिए ब्राह्मण। एक बार क्षत्रिय के घर में जन्म ले लिया, हमेशा के लिए क्षत्रिय। एक बार वैश्य के घर में जन्म ले लिया, हमेशा के लिए वैश्य। और एक बार शूद्र के घर में जन्म ले लिया, हमेशा के लिये शद्र। समाज–रचना का आधार व्यक्ति का वह पद था, वह दर्जा था जो उसे गृह–विशेष में जन्म ग्रहण कर लेने मात्र से प्राप्त था। कोई बड़े से बड़ा ''पाप–कर्म'' भी उसे उसके दर्जे से गिरा न सकता था, इसी प्रकार कोई बड़े से बड़ा ''पुण्य कर्म'' भी किसी को ऊपर न उठा सकता था। न गुण की ही कहीं पूजा थी और न विकास की ही कहीं गुंजाइश थी।

33. कोई भी समाज ऐसा नहीं है जिसमें असमानता न हो। लेकिन ब्राह्मणवाद की बात ही दूसरी है। ब्राह्मण–वाद द्वारा जिस असमानता के सिद्धान्त का प्रचार किया गया है, वह उसका धार्मिक मान्य सिद्धान्त है। यह असमानता अपने आप यूंही प्रतिष्ठित नहीं हो गई है। ब्राह्मण–वाद समानता को मानता ही नहीं रहा। वास्तव में यह समानता के सिद्धान्त का शत्रु है।

34. ब्राह्मण–वाद केवल असमानता से ही सन्तुष्ट नहीं रहा। ब्राह्मण–वाद का प्राण कमिक–असमानता में ही वसा था।

35. समन्वय तथा मेल–जोल की भावना की बजाय, बुद्ध ने सोचा कि यह कमिक–असमानता एक तो नीचे, उसके ऊपर, उसके और ऊपर, सब के ऊपर के वर्गों में कमिक घृणा की भावना पैदा कर देगी, दूसरी ओर उसी तरह सबके ऊपर, उसके नीचे, उससे और नीचे तथा सबके नीचे के वर्ग में कमिक जुगुप्सा की भावना पैदा कर देगी और इससे समाज में स्थायी संघर्ष बना रह सकता है।

36. चारों वर्गों के पेशे भी निश्चित थे। चुनाव की स्वतन्त्रता नहीं थी। इतना ही नहीं, यह पेशे कमोवेश सामर्थ्य या हुनर के हिसाब से निश्चित नहीं किये गये थे, बल्कि जन्म के हिसाब से।

37. चातुर्वर्ण्य के नियमों को ध्यानपूर्वक समझने बूझने से बुद्ध इस परिणाम पर पहुंचे कि ब्राह्मण–वाद की सामाजिक व्यवस्था का दार्शनिक आधार यदि स्वार्थाश्रित नहीं था, तो गलत अवश्य था।

38. बुद्ध को स्पष्ट हो गया था कि इस व्यवस्था से सब के कल्याण की तो आशा की ही नहीं जा सकती, सब की स्वार्थपूर्ति भी नहीं तो सकती। निश्चय से जान बूझ कर इसकी कल्पना ही इस ढंग की गई है कि बहुत से लोग चन्द लोगों के स्वार्थों की पूर्ति में निरत रहे। इस व्यवस्था में आदमी को स्वयं अपने आप मानव–प्रवर (=भू–सुर) बने हुए मानवों की सेवा में झोंक दिया गया था।

39. इसका उद्देश्य कमजोरों को दबाना और उनका शोषण था और उनको सर्वथा गुलाम बनाये रखना।

40. बुद्ध ने सोचा कि जिस ''कर्म–वाद'' की ब्राह्मण–वाद ने रचना की है वह भी विद्रोह की भावना को सर्वथा सोख जाने के लिए ही है। अपने दुःख के लिए स्वयं आदमी ही जिम्मेदार है। विद्रोह करने से भी कष्ट दूर नहीं किया जा सकता। क्योंकि उसके पूर्वजन्म के कर्म ने यह पहले ही निश्चय कर दिया है कि वह इस जन्म में दुखी रहेगा।

41. शूद्र और स्त्रियां – जिनकी मानवता को ब्राह्मण–वाद ने बुरी तरह छिन्न–भिन्न कर दिया था– सर्वथा शक्तिहीन थीं। वह इस पद्धति के विरुद्ध जरा सिर न उठा सकती थीं।

42. उन्हें ज्ञान–प्राप्त करने तक का अधिकार न था। इस जबर्दस्ती के अज्ञान का ही यह दुष्परिणाम था कि वे यह कभी जान ही न सकते थे कि किसने उन्हें इस दुरवस्था तक पहुंचाया है? वे यह जान नहीं सकते थे कि ब्राह्मण–वाद ने उनका सारा जीवन–रस सोख लिया है। ब्राह्मण–वाद के विरुद्ध विद्रोह कर उठने की बजाये वे ब्राह्मण–वाद के भक्त और समर्थक बन गये।

43. स्वतन्त्रता प्राप्ति के निमित्त शस्त्र उठाने का अधिकार आदमी का अन्तिम अधिकार है। लेकिन शूद्रों से शस्त्र धारण करने का अधिकार भी छीन लिया गया था।

44. ब्राह्मण–वाद के अधीन बेचारे शूद्र स्वार्थी ब्राह्मणों, शक्तिशाली क्षत्रियों और धनी वैश्यों के एक भयानक षड़यन्त्र के शिकार मात्र बन कर रह गये।

45. क्या उसमें सुधार हो सकता था? बुद्ध जानते थे कि यह 'भगवान की बनाई हुई' सामाजिक व्यवस्था बताई जाती है, इसलिये इसमें सुधार नहीं हो सकता है। इसे केवल समाप्त ही किया जा सकता है।

46. इन्हीं कारणों से बुद्ध ने ब्राह्मणवाद को सद्धर्म का– जीवन के सच्चे धर्म का – परम विरोधी मान कर अस्वीकार कर दिया।

4 उपनिषद् तथा उनकी शिक्षा

1. उपनिषद् भी वैदिक वाङ्मय का एक हिस्सा माने जाते हैं। यह वेद का हिस्सा नहीं हैं। यह श्रुति–बाह्य से हैं।

2. यह सब होने पर भी यह धार्मिक वाङ्मय का एक हिस्सा है।

3. उपनिषदों की संख्या काफी बड़ी है। कुछ महत्व के कुछ यूँ ही।

4. कुछ में वैदिक सिद्धानिन्तयों का – ब्राह्मण–पुरोहित का काफी विरोध है।

5. सभी एक बात में सहमत थे कि वैदिक अध्ययन 'अविद्या' का ही अध्ययन है।

6. वेदों और वैदिक विज्ञान को सभी अपरा (नीचे दर्जे की) विद्या ही मानते थे।

7. वे सभी वेद को अपौरुषेय न मानने के समर्थक थे।

8. ब्राह्मणी–दर्शन की ऐसी प्रधान स्थापनाओं – जैसे यज्ञ और उनके फल, श्राद्ध और ब्राह्मण–पुरोहितों को दिये जाने वाले दानों के माहात्म्य – को अस्वीकार करने में सभी एकमत थे।

9. किन्तु यह कोई उपनिषदों का मुख्य विषय न था। उनकी चर्चा का मुख्य विषय है ब्रह्म और आत्मा।

10. ब्रह्म ही व सर्वव्यापक तत्व है जो विश्व को बांधे हुए है और आदमी की मुक्ति भी इसी बात में है कि उसके आत्मा को इस बात का बोध हो जाय कि वह भी 'ब्रह्म' है।

11. उपनिषदों की मुख्य स्थापना यही थी कि 'ब्रह्म' ही सत्य है, तथा 'आत्मा' और 'ब्रह्म' एक ही है। उपाधि–ग्रस्त होने के कारण ही 'आत्मा' को इस बात का बोध नहीं होता कि ह 'ब्रह्म' है।

12. प्रश्न पैदा हुआ क्या 'ब्रह्म' एक वास्तविकता है? उपनिषदों की सारी स्थापना इसी एक प्रश्न के उत्तर पर निर्भर करती है।

13. बुद्ध को 'ब्रह्म' की वास्तविकता का कोई प्रमाण नहीं मिला। इसलिए उन्होंने उपनिषदों की स्थापना को अस्वीकार कर दिया।

14. ऐसा नहीं है कि स्वयं उपनिषदों के रचयिताओं से इस बारे में प्रश्न न पूछे गये हों। वे पूछे गये थे।

15. इस तरह के प्रश्न याज्ञवल्क्य जैसे महान् ऋषि से भी पूछे गये थे, जिसका बृहदारण्यक उपनिषद् में उतना महत्वपूर्ण स्थान है।

16. उससे पूछा गया था ''ब्रह्म क्या है? आत्मा क्या है?'' याज्ञवल्क्य इतना ही उत्तर दे सका था – ''मैं नहीं जानता, मैं नहीं जानता – नेति, नेति।''

17. बुद्ध को शंका थी कि जिसके विषय में कुछ जानता ही नहीं, वह 'वास्तविकता' कैसे हो सकती है? इसलिए उन्होंने उपनिषदों की स्थापना को भी शुद्ध कल्पना समझ अस्वीकार कर दिया।

साभार :
भगवान बुद्ध और उनके धर्म
पेज संख्या 68 से 79
डॉ. भदन्त आनन्द कौसल्यायन

Youtube पर Dravid Bharat Channel को Subcribe करें और दबायें।

ब्राह्मणों ने हिन्दू देवताओं को एक दूसरे से क्यों लड़ाया ?

विश्व के सबंध में हिंदुओं का तत्वज्ञान त्रिमूर्ति पर आधारित है। उनके अनुसार विश्व की तीन स्थितियां हैं। सृष्टि, पालन और संहार। यह एक अविरल क्रम है। यह तीन कार्य ब्रह्मा, विष्णु और महेश द्वारा किये जाते हैं। ब्रह्मा ने सृष्टि की रचना की। विष्णु इसका पालनहार हैं और महेश संहारक। ये देवता त्रिमूर्ति कहे जाते हैं। त्रिमूर्ति के सिद्धांत से परिलक्षित है कि तीनों का पद समान हैं। ऐसा कार्य सम्पन्न करते हैं, जो अन्योन्याश्रित है, उनमें कोई विरोध नहीं। वे परस्पर मित्र हैं, विरोधी नहीं। वे परस्पर सहायक है, शत्रु नहीं।

इन तीनों देवों के कार्यों का उल्लेख करने वाले साहित्य के अध्ययन से पता चलता है कि स्थिति बिल्कुल भिन्न है। कथनी और करनी में अंतर है। ये देव परस्पर मित्र होने के स्थान पर एक–दूसरे के शत्रु हैं, जो श्रेष्ठता और सत्ता के लिये एक–दूसरे से भिड़ जाते हैं। पुराणों के कुछ उदाहरण स्थिति स्पष्ट कर देंगे।,

एक समय था जब विष्णु और शिव की अपेक्षा ब्रह्मा परमदेव थे। ब्रह्मा को जगत नियंता बताया गया है अर्थात प्रथम प्रजापति। वे शिव के भी जनक हैं और विष्णु के भी स्वामी हैं। यदि विष्णु सृष्टि के पालक हैं तो इसका आदेश उन्हें ब्रह्मा से मिला है। ब्रह्मा का परम पद ऐसा पद है कि रुद्र और नारायण तथा कृष्ण और शिव के बीच विवाद पर निर्णय ब्रह्मा देते हैं।

इतना ही ध्रुव सत्य है कि कालांतर में ब्रह्मा का शिव और विष्णु से संघर्ष हुआ और आश्चर्य है कि अपने विरोधियों के समक्ष उन्हें अपनी श्रेष्ठता से हाथ धोना पड़ा। विष्णु के साथ उनके संघर्ष के दो उदाहरण है।

पहला अवतारों की कथा। अवतारों के विषय में ब्रह्मा और विष्णु के मध्य प्रतिद्वंदिता हैं। मानवता को आपदाओं से त्राण दिलाने हेतु अवतार सिद्धांत ब्रह्मा के अवतार से आरम्भ होता है। कहा जाता है कि उन्होंने दो अवतार लिये (1) वाराह और (2) मत्स्य। परंतु विष्णु भक्त यह मानने को तैयार नहीं। उनका कथन है कि ये अवतार ब्रह्मा ने नहीं लिये अपितु विष्णु ने लिये थे। उन्हें इन्हीं अवतारों से संतोष नहीं हुआ। उन्होंने कहा कि विष्णु ने और भी अवतार लिये थे। पुराणों में विष्णु के अवतार बताने की होड़ सी लग गई।

दूसरी कथा सर्वप्रथम जन्म धारण करने की है। इसका उल्लेख स्कंदपुराण में है। कथा इस प्रकार है कि एक बार विष्णु देवी के वक्ष स्थल पर सो रहे थे। उनकी नाभि से एक कमल प्रकट हुआ और यह पुष्प जल की सतह पर आ गया। उसमें ब्रह्मा प्रकट हुये। उन्होंने जब यह देखा कि इस अनंत में कोई जीव नहीं है तो उन्होंने सोचा सर्वप्रथम वे ही उत्पन्न हुये हैं और इस प्रकार उन्होंने अपने को भावी सृष्टि से पूर्व जन्मा बताया। फिर भी यह निश्चय करने के लिये कि उनकी प्रमुखता को चुनौती कौन दे सकता है ? उन्होंने कमल नाल को खींचा तो विष्णु को सोता हुआ पाया। उन्होंने जोर से पूछा ''यह कौन है ?'' विष्णु ने कहा मैं सबसे पहले जन्मा हूँ, और जब ब्रह्मा ने अपने को पूर्व जन्मा बताया तो दोनों में युद्ध छिड़ गया। तभी महेश प्रकट हुये और कहा, पहले मेरा जन्म हुआ है। परन्तु मैं तुम दोनों में से किसी के लिये भी यह स्थिति त्यागने के लिये तैयार हूँ यदि तुममें से कोई मेरी शिखा तक अथवा मेरे पांवों के तलवे तक पहुंच जायें। ब्रह्मा तुरन्त तैयार हो गये किन्तु वे थक गये थे पर बिना बात की बात पर अनिच्छुक हो गये इसलिये उन्होंने अपना दावा त्याग दिया। वे महादेव की ओर मुड़े और कहा। उन्होंने बात पूरी कर दी है और उनके माथे का मुकुट देख लिया है और साक्षी के लिये प्रथम जन्मी गाय को बुला लिया। इस दर्प और झूठ पर शिव को क्रोध आ गया और उन्होंने कहा कि ब्रह्मा की कोई पूजा नहीं होगी और गाय का मुख विकृत हो जायेगा। फिर विष्णु आये और उन्होंने यह स्वीकार किया कि वे शिव के चरण नहीं देख पायें तब उन्होंने उनसे कहा कि देवों में वही प्रथम जन्में हैं और उनका पद सर्वोच्च है। इसके पश्चात शिव ने ब्रह्मा का पांचवां मुख काट डाला और उनका मौन भंग हुआ। उनकी शक्ति और प्रभाव क्षीण हो गये।

इस कथा के अनुसार ब्रह्मा का यह दावा झूठा था कि उनका जन्म सर्वप्रथम हुआ हैं। इसके लिये वह शिव के दण्ड के भागी बने। विष्णु को प्रथम जन्मा कहलाने का अधिकार मिला। ब्रह्मा के अनुयाइयों ने शिव की सहायता से विष्णु द्वारा ब्रह्मा का स्थान छीन लेने पर बदला लेने की ठानी। इसलिये उन्होंने एक और कथा रच डाली, जिसके अनुसार विष्णु ब्रह्मा के नथुनों से सूकर रूप में उत्पन्न हुये और स्वाभाविक रूप से वाराह बन गये – विष्णु के वाराह अवतार का यह बहुत तुच्छ विश्लेषण है।

इसके पश्चात ब्रह्मा ने शिव–विष्णु के बीच शत्रुता उत्पन्न कराने की चेष्टा की। स्वाभाविक है कि अपनी स्थिति बेहतर बनाने के लिये यह चेष्टा की होगी। यह कथा रामायण में कही गई है। वह इस प्रकार है–

जब राजा दशरथ, मिथिलापति जनक, जिसकी पुत्री से राम का विवाह हुआ था, से विदा लेकर अपने राज्य को लौट रहे थे तो उनके समक्ष अपशकुन हुये, उनके चारों ओर भयंकर स्वर वाले पक्षी चीख उठे और भूमि पर चलने वाले मृग उनके दाहिनी ओर चलने लगे। यह देखकर दशरथ ने वशिष्ठ से पूछा, पक्षी चीख रहे हैं और मृग दाहिनी ओर चल रहे हैं, यह शकुन शुभ भी है और अशुभ भी है। यह क्या बात है ? इससे मेरा हृदय शंका से भर उठा है। तब वशिष्ठ बोले यह परशुराम के आगमन की चेतावनी है तो तूफान की तरह चले आ रहे हैं जिससे पृथ्वी कांप उठी है, पेड़–पौधे गिरने लगे हैं और गहन अंधकार छा गया है। धूल से सूरज ढक गया है। परशुराम सामने से आ रहे हैं, बड़े भयानक दिखाई दे रहे हैं, कंधे पर फरसा और धनुष–बाण है। दशरथ ने उनका सम्मानपूर्वक अभिवादन किया, जिसे परशुराम ने स्वीकार कर लिया और दशरथ पुत्र राम की ओर बढ़े। कहा कि राम तुम्हारा बहुत पराक्रम सुना है। जनक द्वारा दिया गया शिव धनुष भी तुमने तोड़ दिया है। मैं दूसरा धनुष लेकर आया हूँ। इसे खींचकर बाण चढ़ाओं। बाण चढ़ाने से तुम्हारे बल का अनुमान लगाकर मैं तुम्हारे साथ द्वंद्व करूंगा। परशुराम का वचन सुनकर दशरथ की हवाइयां उड़ गईं। परन्तु उन्होंने परशुराम से दीनभाव से ही बातचीत की। परशुराम ने फिर राम से ही कहा कि जो धनुष तुमने तोड़ा है, वह शिव का धनुष था किंतु अब जो धनुष मै लाया हूँ वह विष्णु का है। ये दोनों धनुष विश्वकर्मा ने बनाये थे, जिनमें से एक महादेव को दिया गया और दूसर विष्णु को।

इसके आगे का वर्णन इस प्रकार है :

तब देवताओं ने ब्रह्मा से आग्रह किया कि नीलकंठ (महादेव) और विष्णु के गुणावगुण का पता लगायें। परम श्रेष्ठ ब्रह्मा ने दोनों के बीच वैमनस्य के आशय को जान लिया। इस स्थिति में नीलकंठ और विष्णु के बीच घमासान युद्ध छिड़ गया। दोनों ही एक दूसरे को पराजित करना चाहते थे। शिव जी के विकराल धनुष में शिथिलता आ गई और त्रिनेत्र शिव जाप करने लगे। दोनों महान देवों के देवता समूह, ऋषियों और चारणों ने अर्चना की और वे शांत हो गये। जब देवताओं ने यह देखा कि विष्णु के तेज के आगे शिव धनुष शिथिल पड़ गया तो देवताओं ने विष्णु की श्रेष्ठता मान ली।

इस प्रकार ब्रह्मा ने महादेव द्वारा अपने प्रति किये गये अन्याय का बदला ले लिया।

इस प्रपंच से भी ब्रह्मा विष्णु पर श्रेष्ठता न पा सके। ब्रह्मा का इतना पराभव हुआ कि जो कभी विष्णु को आदेश देते थे, वही ब्रह्मा का सृष्टा कहलाया।

शिव के साथ हुये श्रेष्ठता–संघर्ष में भी ब्रह्मा की वैसी ही गत बनी, इस संदर्भ में भी स्थिति ठीक विपरीत हो गयी। कहां तो शिव ब्रह्मा से उत्पन्न हुये और कहां अब शिव ब्रह्मा के सृष्टा बन गये। ब्रह्मा मुक्ति के कारण नहीं रहे। वह देवता, जो मोक्ष प्रदान कर सकते थे, शिव थे और मुक्ति पाने के लिये ब्रह्मा की हैसियत शिव और उनके लिंग की एक साधारण भक्त की तरह करने की हो गई, वह शिव के सेवक हो गये और उनके सारथी बने।

अंततोगत्वा, अपनी पुत्री के साथ व्यभिचार करने के आरोप के कारण ब्रह्मा पूज्नीय नहीं रहे। भागवत पुराण में इस लांछन का उल्लेख इस प्रकार है –

'' हे क्षत्रिय! हमनें सुना है कि स्वायंभुव के मन में अपनी अबला और मोहक पुत्री वाच के प्रति कामुकता जगी, जिसके मन में उनके प्रति कामभाव नहीं था। ऋषियों, और मरीचि के नेतृत्व में अपने पिता के कुकर्म पर उनके पुत्रों ने उन्हें फटकारा। तुमने ऐसा कुकर्म किया है, जो तुमसे पहले किसी ने नहीं किया। न तुम्हारेबाद कोई ऐसा करेगा। क्या तुम्हें विधाता होते हुये अपनी पुत्री से ही विषयभोग करना था ? क्या तुम अपने उन्माद को रोक नहीं सकते थे ? अरे विश्व के गुरु तुम्हारे जैसे गौरवशाली व्यकित के लिये यह प्रशंसनीय नहीं है। जिनके कार्यों की मर्यादा के कारण व्यक्ति को आनन्द प्राप्त होता है जो जिस विष्णु की महिमा की दीप्ति से यह ब्रह्मांड प्रकाशित होता है, लौ उसी से फूटती है। उसे विष्णु धर्म परायणता को बनाये रखना चाहिये, अपने पुत्रों के व्यवहार को देखकर, जो प्रजापतियों के स्वामी से ऐसा कह रहे थे, प्रजापति शर्म से गड़ गये और अपने शरीर का विखंडन कर दिया। उसके भयानक अवशेष उस क्षेत्र में फैल गये और वही कोहरे के नाम से विख्यात हुआ।''

ब्रह्मा के विरुद्ध ऐसा अपकर्ष एवं अपमानजनक प्रहार होने से वह चारों खाने चित्त हो गये। इसमें कोई आश्चर्य नहीं। भारत से उनकी उपासना लुप्त हो गई और त्रिमूर्ति में औपचारिक रूप से ही सहभागी रह गये।

ब्रह्मा के मैदान से बाहर होने पर रह गये शिव और विष्णु। ये दोनों भी कभी चैन से नहीं बैठ पाये। दोनों के बीच होड़ और खींचतान जारी रही।

शिव और विष्णु उपासकों में पुराणों के माध्यम से एक दूसरे के विरुद्ध जो प्रचार होता रहा, उसका उदाहरण निम्नांकित से देखा जा सकता है।

विष्णु से वैदिक देवता सूर्य का और शिव भक्त अग्नि का संबंध जोड़ते हैं। इसका आशय यह प्रकट करना था कि यदि विष्णु का उदभव वैदिक है तो शिव का उद्गम भी वैदिक है। जन्म के आधार पर कोई भी एक–दूसरे से घटरक नहीं है।

Youtube पर Dravid Bharat Channel को Subcribe करें और दबायें।

शिव विष्णु से बड़े हों और विष्णु कम न हों। विष्णु से सहस्त्र नाम हैं तो शिव के भी सहस्त्र नाम होने चाहिये और ऐसा ही हुआ।

विष्णु के चार चिह्न हैं। इसलिये शिव के भी होने चाहिये। वे हैं – जटा से बहती गंगा, चन्द्रचूड़, नाग और जटाजूट।

एक मात्र क्षेत्र है, अवतार जहां शिव विष्णु की बराबरी में नहीं है। इसका कारण यह नहीं है कि उनकी इच्छा बाजी मार लेने की नहीं थी। परन्तु दार्शनिक दृष्टि से शिव के मार्ग में अवतार संबंधी एक अवरोध था शिव और विष्णु के उपासकों में परमानन्द की अवधारणा के संबंध में मौलिक मतभेद हैं। यह श्री अय्यर ने स्पष्ट किया है :

'' शैवों का उद्देश्य है दैहिक और मानसिक बंधनों से मुक्ति और उनका पूर्ण उत्सर्ग। इसलिये वे शिव को अक्षय मानते हैं अर्थात जो कभी नष्ट नहीं होता अपितु संपूर्ण जगत का संहार करता है। इसी कारण रुद्र को महाकाल कहा जाता है। किसी व्यक्ति के आध्यात्मिक ज्ञान की चरमसीमा पर परम शिव से उसका भेद मिट जाता है, वह अपने भौतिक शरीर, मन, सुख, और दुख और कर्तव्य से ज्ञानातीत हो जाता है। वह शिव में सयुज्य हो जाता है। इस स्थिति में वह स्वयं में और शिव में भेद करना भूल जाता है। जब तक वह इस स्थिति में नहीं पहुंचता, वह अपूर्ण है चाहे वह कितना भी शुद्ध कितना ही योग्य क्यों न हो। सयुज्य तक पहुंचने हेतु जो भी पात्र हैं, वे मात्र सालोक्य, सामीप्य और सारूप्य का गौण पद ही पाते हैं। यही कारण है कि अवतार का सिद्धांत शैवों को आकर्षित नहीं कर पाया। अवतार के रूप में भगवान सीमित हो जाता है अर्थात् ऐसा व्यक्ति जो कदाचित अपने को तो बंधन मुक्त कर लेता है परन्तु मुक्त को मुक्त नहीं कर सकता। वैष्णवों का मत भिन्न है। परमपद के संबंध में उनकी स्पष्ट अवधारणा है। हमें परमात्मा से एककार होना है। इसके बावजूद हमें उसकी चेतना रहनी चाहिये। उसे ब्रह्मलीन होना है। इससे ब्रह्माण्ड की अक्षयता के रूप में सत्य का एक अन्य पक्ष माना जाये। दूसरे शब्दों में वह ब्रह्मांड के पालन के पक्ष में हैं जो प्रकट पुरुष की पहचान से न कम है न ज्यादा। यही कारण है विष्णु को पालनहार कहा गया है। अंततोगत्वा यही भेद है जिससे सत्य का दर्शन होता है। शैव विश्व को दुःख और दारूण का पाश मानते हैं। (इससे सभी को पशु बनना पड़ता हैं) जिसको तोड़ा जाना चाहिये और उसका संहार होना चाहिये। वैष्णव इसे पुरुष की महानता का प्रमाण मानते हैं और इसके पालन के पक्ष में हैं। शैव निराशावाद अथवा दुखवाद के कारण धर्मसूत्रों के प्रति आस्थावान नहीं है। न वे अर्थशास्त्र और अन्य ग्रंथों को ही मानते हैं जो विश्व के संचालन और कल्याण के लिये बना दिये गये हैं। वे पुष्टिमार्गी नहीं है। वे नियमों और परम्पराओं की अवज्ञा करते हैं। किसी परमशैव के लिये जाति–बंधन खण्डनीय हैं। हां, वे निसंदेह उसका पालन कर सकते हैं जो परिपक्व नहीं है। वह समाज के उन्हीं लोगों का सम्मान करते हैं और उनके विस्तार के पक्ष में हैं जो चाहे किसी भी जाति के हों, परन्तु शिव के साथ सामीप्य, सालोक्य, सारूप्य और सयोज्य हों। दूसरी ओर वैष्णवों की रूचि सभी नियमों के पालन में हे जिससे विश्व का कल्याण हो। यदि धर्म का क्षय होता है तो विश्व का भी क्षय होगा और विश्व का क्षय नहीं होना चाहिये क्योंकि यह पुरूष के अर्न्तयामी होने का लक्षण है। यह उनका कर्म है कि धर्म की रक्षा हो। यदि स्थिति नियंत्रण से बाहर हो जाती है तो विष्णु स्वयं ठीक करते हैं। इसलिये वे अवतार धारण कर विश्व में अवतरित होते हैं। परन्तु जब विष्णु धरती पर आते हें तो दुष्टों का विनाश करते हैं। इसलिये यह आवश्यक है कि हम जानें कि जो धर्म का क्षय करता है उसे विष्णु का कोप भाजन बनना पड़ता है। इसी प्रकार शिवभक्तों के लिये जो विधान लिया गया है, उसमें जाति–बंधन अप्रासंगिक है और भक्ति धर्म तक सीमित है। उससे समुचित पालन से भगवान के दर्शन होंगे और अंततोगत्वा, शिव के साथ एकाकार होगा, दूसरे इसे शूद्र नहीं मानते। यह जाति उन्मूलक है और वे सनातन शास्त्रों के अनुरूप नहीं है।''

शिव की महिमा में किये गये प्रचार के समान ही विष्णु–भक्तों ने उसके खण्डन के लिये प्रचार–तंत्र अपनाया। गंगा अवतरण का प्रसंग एक उदाहरण है। शिवभक्त उसकी उत्पत्ति शिव की जटाओं से मानते हैं। परन्तु वैष्णव इसे मानने को तैयार नहीं थे। उन्होंने एक और कथा रच डाली। वैष्णवों के आख्यान के अनुसार पतितपावनी गंगा बैकुण्ड (विष्णु के निवास) से निकलती है। उसका उद्गम विष्णु के चरणों से हैं और कैलाश पर आकर वह शिव के मस्तक पर उतरती है। इस कथा के दो निष्कर्ष हैं। प्रथम यह कि गंगा का उद्गम विष्णु के चरणों से हैं, शिव की जटा से नहीं। फिर शिव का पद विष्णु से नीचा है क्योंकि उनके मस्तक पर गंगा की धार विष्णु से गिरती है।

दूसरा उदाहरण देवों और असुरों द्वारा सागर–मंथन है। उन्होंने मंदराचल पर्वत को मथानी और शेष नाग को रस्सी बनाया। विष्णु ने कर्म अवतार लिया, फिर पृथ्वी को अपनी पीठ पर धारण किया और मंथन के समय उसके स्पंदन को नियंत्रित किया।

यह कथा विष्णु की महिमा बढ़ाने के लिये रची गई है। शिव का स्थान इसमें गौण है। इसके अनुसार समुद्र तल से चौदह रत्न निकले। इनमें से हलाहल एक था। जब तक कोई इस हलाहल का पान न करता वह समस्त विश्व को नष्ट कर सकता था। शिव ही उसके पान के लिये तत्पर हुये। इससे यह संकेत मिलता कि विष्णु द्वारा दोनों विरोधी समूहें, देव और असुरों को सागर–मंथन की अनुमति देकर विश्व के विनाश का द्वार खोल दिया था और अविवेकपूर्ण कार्य किया था। शिव की महिमा बताई गयी है कि उन्होंने विषपान करके विष्णु की मूर्खता से होने वाले अनिष्ट से विश्व को बचा लिया।

तीसरा उदाहरण भी यह प्रकट करता है विष्णु मूर्ख थे और शिव ने ही अपनी विलक्षण बुद्धिमत्ता और पराक्रम से विष्णु को उनकी मूर्खताओं के परिणाम से त्राण दिलाया। यह कथा अक्रूरासुर की है। अक्रूरासुर ऋक्ष के मुख वाला एक राक्षस था। इसके बावजूद वह नियमित रूप से वेद–पाठ करता था और भक्तिकर्म करता था। विष्णु उससे अत्यंत प्रसन्न थे और उसे मन चाहा वरदान देने का वचन दे डाला। अक्रूरासुर ने वर मांगा कि त्रिलोक में उपस्थित कोई प्राणी उसके प्राण नहीं ले सके। विष्णु मान गये। परन्तु वह इतना ढीठ हो गया कि जब उसने देवताओं का त्रास दिया तो उन्होंने उसके समक्ष समर्पण कर दिया और वह विश्व का शासक बन बैठा। असुर के अत्याचारों से लाचार विष्णु काली कट पर चिंतित बैठे थे। उनका रोष स्पष्ट दिख रहा था। उनकी आंखों के सामने इस आकार का जीव प्रकट हुआ, जो पहले त्रिलोक में विद्यमान नहीं था। वह रौद्ररूपी महादेव थे जिन्होंने क्षण भर में विष्णु को त्राण दिलाया।

इसके प्रतिरोध मे भस्मासुर की कथा प्रचलित हुई कि शिव औघड़ (मूर्ख) हैं और विष्णु ने उनकी करतूत से उन्हें बचाया। भस्मासुर ने शिव को एक वरदान पाने के लिये प्रसन्न कर लिया। वरदान यह था कि

सेवा में,

नाम .....

पता .....

.....

.....

भस्मासुर जिसके भी सिर पर हाथ फिरायेगा, वह भस्म हो जायेगा। शिव ने वरदान दे दिया। भस्मासुर ने शिव के वरदान से उन्हें ही भस्म करने की ठानी। शिव सिर पर पांव धरकर भागे और विष्णु के पास पहुंचे। विष्णु ने मोहिनी रूप धारण किया और भस्मासुर के पास गये। वह उन्हें देखकर आसक्त हो गया। मोहिनी रूपी विष्णु ने कहा कि वह एक शर्त पर उनकी हो जायेगी कि जैसे जैसे वह करे वैसे ही भस्मासुर करे, विष्णु ने इस प्रकार भस्मासुर का हाथ उसके सिर पर रखवा दिया। परिणाम यह निकला कि भस्मासुर का काम तमाम हो गया और विष्णु को यह श्रेय मिला कि उन्होंने शिव को उनकी मूर्खता के कारण संभावित विनाश से बचा लिया।

क्या ईश (महादेव) किसी अन्य दृष्टि से भी कार्यों का कारण है ? हमने यह नहीं सुना है किसी व्यक्ति के लिंग की दूसरे व्यक्ति और देवता पूजा करें। आप बतायें कि क्या आपने कहीं सुना है कि शिव के सिवाय किसी अन्य के लिंग की पूजा की जाती हैं अथवा पहले भी कभी देवताओं ने की है। जिसके लिंग की ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्र देवताओं सहित निरंतर पूजा करते हैं। इस प्रकार शिव सर्वोच्च है। जातकों में न तो कमल–चिह्न (ब्रह्मा का) न ही चक्र (विष्णु का) और न ही वज्र (इन्द्र का) होता है बल्कि उनमें स्त्री पुरूष के अंग होते हैं। इस प्रकार सारी संतानों का दाता महेश्वर है। सभी नारियां देव से उत्पन्न हैं, उनमें नारी के अंग हैं और पुरूषों में शिवलिंग विद्यमान रहता है। चराचर में से एक भी ढूढ़ दो। सब जान लीजिये जो पुरूष हैं वे ईश हैं जो नारी हैं, वे उमा हैं। इस प्रकार सारा चराचर विश्व इन दो में से निकला है।

यूनानी दार्शनिक जैनोफेन्स इस बात पर बल देते हैं कि बहुदेववाद अमान्य है और इसमें विरोधाभास है। इसलिये एकेश्वरवाद ही सत्य है। दार्शनिक कसौटी पर परखने से जैनोफेन्स का विचार सही हो सकता है। परन्तु ऐतिहासिक दृष्टिकोण से दोनों स्वाभाविक है। जहां एक ही सम्प्रदाय का समाज है वहां बहुदेववाद स्वाभाविक और आवश्यक है। क्योंकि प्रत्येक प्राचीन सम्प्रदाय में न केवल भिन्न व्यक्ति होते हैं बल्कि उनके विविध भगवान भी होते हैं। विभिन्न समुदायों का विलय और समुदाय सिवा इसके संभव नहीं कि उनके भगवान को दूसरे भी स्वीकार करें। इस प्रकार बहुदेववाद पनपा।

निष्कर्ष निकलता है कि हिंदुओं में अनेक भगवान का अस्तित्व ठीक है क्योंकि हिंदू समाज अनेक कबीलों–सम्प्रदाओं का जमघट है जिनके अलग–अलग देवता हैं। आश्चर्यजनक बात यह है कि ये देवता आपस में संघर्षरत परस्पर दोषारोपण और वंदना में निरत रहे। यह सब कुछ लज्जा और क्षुद्रता की बात है। इसका स्पष्टीकरण वांछित हैं।

साभार : दसवी पहेली,
बाबा साहब डा. अम्बेडकर,
सम्पूर्ण वाड्मय खण्ड 8,
पृष्ठ सं. 80 से 88 तक

Youtube पर Dravid Bharat Channel को Subcribe करें और दबायें।